षाण्मासिकी

ISSN 2277-5854 UGC Approved Journal No 40949 UPNUL/2013/51445

श्रीविद्यामन्त्रमहायोग

आगमतन्त्र की शोधपत्रिका

श्रीविद्या साधना पीठ

वाराणसी - उ.प्र.

वर्ष - १६ अगस्त २०२६ अङ्क १

श्रीविद्यामन्त्रमहायोग ★ आगमतन्त्र की शोधपत्रिका

वर्ष-१६, अगस्त २०२६, अङ्क १

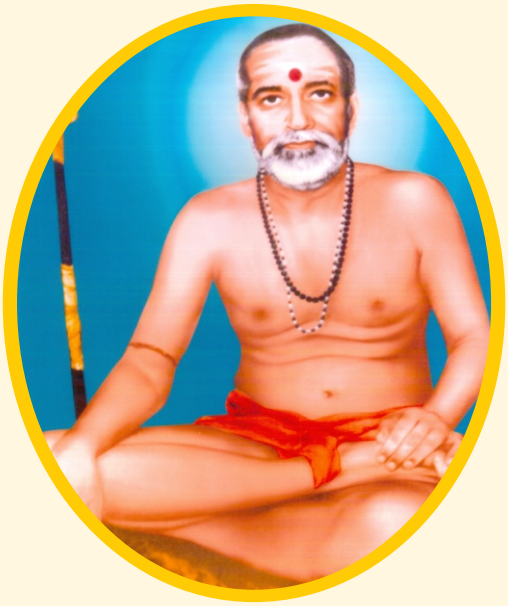

ब्रह्मलीन पूज्यपाद धर्मसम्राट् श्रीहरिहरानन्दसरस्वतीकरपात्रस्वामी

दीक्षानाम - षोडशानन्दनाथ



शिवसायुज्यप्राप्त पं.सीताराम कविराज

दीक्षानाम - दत्तात्रेयानन्दनाथ

UPNUL/2013/51445
अभिनिर्देशित एवं सन्दर्भित

ISSN 2277-5854
UGC CARE LISTED

श्रीविद्यामन्त्रमहायोग

(आगमतन्त्र की शोधपत्रिका)

(षाण्मासिकी)

संस्थापक सम्पादक
श्री दत्तात्रेयानन्दनाथ जी
(पं. सीताराम कविराज)

सम्पादक
प्रो. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा
पूर्व-समन्वयक, उच्च अध्ययन केन्द्र व
पूर्व-अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

सह-सम्पादक
डॉ. दीपक कुमार शर्मा
सहायक आचार्य, डी.ए.वी.पी. जी. कॉलेज (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय), वाराणसी।

श्रीविद्यासाधनापीठ
वाराणसी (उ.प्र.)

वर्ष 16 अङ्क 1

श्रीविद्या साधना पीठ शिवसदन गणेश बाग, नगवा, वाराणसी के लिये प्रकाशानन्दनाथ द्वारा श्रीविद्या साधना पीठ, शिवसदन, गणेश बाग, नगवा, वाराणसी से प्रकाशित एवं कृष्णा प्रिंटर्स लंका, वाराणसी से मुद्रित।

Website Link : https://shreevidyasadhanapeeth.com/our publications

अगस्त, **2026**

सम्पादक :
प्रो. राजेन्द्रप्रसाद शर्मा

प्राप्तिस्थान
प्रकाशन विभाग
श्रीविद्यासाधनापीठ
शिवसदन, गणेशबाग, नगवाँ, वाराणसी
दूरभाष : 0542-2366622/9452917551

UPNUL/2013/51445
ISSN. 2277-5854
UGC Approved Journal (No. 40949)
UGC CARE-listed

सङ्गणकटङ्कित :
विशाल कम्प्यूटर्स, जयपुर

मुद्रक :
कृष्णा प्रिंटर्स,
लंका, वाराणसी।

मूल्य : 125/-

सम्पादकीय परामर्श मण्डल

प्रो. यज्ञेश्वर शास्त्री, पूर्व-कुलपति, साञ्ची विश्वविद्यालय, साञ्ची

प्रो. एस. सुदर्शन शर्मा, पूर्व-कुलपति, श्री वेंकटेश्वर वैदिक विश्वविद्यालय, तिरुपति।

प्रो. श्रीनिवास वरखेडी, कुलपति, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

प्रो. श्रीकिशोर मिश्र, प्रोफेसर एवं पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू वि. वि., वाराणसी-221005

प्रो. सच्चिदानन्द मिश्र, सदस्य, भारतीय दार्शनिक अनुसन्धान परिषद्, महरौली-बदरपुर रोड, नई दिल्ली-110062

प्रो. रमाकान्त आङ्गिरस, कालिदास प्रोफेसर एवं पूर्व-अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

प्रो. शीतलाप्रसाद पांडेय, पूर्व-अध्यक्ष, धर्मागम विभाग, संस्कृतविद्या, धर्मविज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

प्रो. गोपाल प्रसाद शर्मा, अध्यक्ष, वेद विभाग, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली-110016

प्रो. रवीन्द्रनाथ भट्टाचार्य, संस्कृत विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता-700073

प्रो. चन्द्रकान्ता राय, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, आर्यमहिला पी.जी. कॉलेज, वाराणसी,-221002

प्रो. अम्बिकादत्त शर्मा, दर्शन विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर-470003

नोट : इस अंक में प्रकाशित समस्त लेखों के सम्बन्ध में सभी विवाद वाराणसी न्यायालय के अधीन होंगे।

UPNUL/2013/51445 Peer Reviewed & referred ISSN 2277-5854
Peer Reviewed & referred UGC CARE LISTED

ŚRĪVIDYĀ MANTRAMAHĀYOGA

Āgamic-Tāntric Research Journal

(Bi-annual)

Founder-Editor
Sri Dattātreyānandanāth
(Pt. Sitaram Kaviraj)

Editor
Prof. Rajendra Prasad Sharma
Ex-Co-ordinator (UGC CAS)
Ex-Head, Department of Philosophy,
University of Rajasthan, Jaipur.

Co-Editor
Dr. Deepak Kumar Sharma
Asstt. Professor, D.A.V. PG College, (Banaras Hindu University) Varanasi.

ŚRĪVIDYĀ SĀDHANĀ PĪTHA
Varanasi (U.P.)

वर्ष 16 अङ्क 1

Printed and Published by Prakashanand Nath on behalf of Shree Vidya Sadhna Peeth, Shivsadan Ganesh Bagh, Nagwa, Varanasi.
Printed at Krishna Printers, Lanka, Varanasi and Published at Shree Vidya Sadhna Peeth, Shivsadan, Ganesh Bagh, Nagwa, Varanasi.

Website Link : https://shreevidyasadhanapeeth.com/our publications

August, 2026

Editor :
Prof. Rajendra Prasad Sharma

Publications are available at :
Publications Department
ŚRĪVIDYĀ SĀDHANĀ PĪTHA
Shiv Sadan, Nagawa, Varanasi-221005
Ph. 0542-2366622 / 9452917551

UPNUL/2013/51445
ISSN. 2277-5854
UGC Approved Journal (No. 40949)
UGC CARE-listed

Type Setting :
Vishal Computers, Jaipur.

Printer :
Krishna Printers, Lanka, Varanasi

Price : 125/-

Note : Any dispute arising on articles published in this issue shall be decided under the jurisdiction of Varanasi Court only.

विषयसूची

	सम्पादकीय	प्रो. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा	
शोधलेख			
1.	मेरी (आत्मा की) अन्तर्यात्रा	आचार्य गुलाब कोठारी	1–3
2.	*चरकसंहिता* का चिकित्साविषयक षड्धात्वात्मक पुरुष सिद्धान्त	(म.म.राष्ट्रपतिसम्मानित) प्रो. बनवारी लाल गौड़ एवं डॉ. विश्वावसु गौड	4–10
3.	निगमागम शास्त्र सम्मत शक्ति विमर्श	डॉ. त्रिपुरसुन्दरी	11–16
4.	नाथ–पन्थ में शक्ति तत्त्व की भूमिका	डॉ. रञ्जनलता	17–22
5.	अभिनवगुप्तस्य शक्तितत्त्वविमर्शः	अमृता सेन गुप्ता	23–28
6.	तन्त्रागमदृष्ट्या परावाचोऽनुशीलनम्	डॉ. सुभाष पैन्यूली	29–36
7.	चतुर्विध वाणी की आगमिक व तान्त्रिक साधना का स्वरूप	डॉ.हर्षदेव माधव (प्रकाशानन्दनाथ महानित्याम्बा)	37–45
8.	त्रिक दर्शन में वाक् तत्त्व : स्वरूप एवं विमर्श	डॉ. रौशन सिंह	46–54
9.	*स्तवचिन्तामणि* स्तोत्र में प्रतिपादित भक्ति का स्वरूप	डॉ. रमेश चन्द्र नैलवाल	55–61
10.	*गोरक्ष पद्धति* में प्राणायाम एवं आसन का वैशिष्ट्य	प्रो. गोपाल प्रसाद शर्मा	62–66

11.	भारतीय दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में *विज्ञानभैरवतन्त्र* की मुख्य धारणाओं का अध्ययन	आदित्य कुमार	67–74
12.	*नारदपाञ्चरात्र–भारद्वाजसंहिता* में परमनिःश्रेयस का उपाय : न्यासयोग एवं प्रपत्ति	डॉ. छबिलाल न्यौपाने	75–79
13.	भगवती तारा एवं छिन्नमस्ता का स्वरूप एवं साहित्य	प्रो. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा	80–85
14.	वैदिक विज्ञान में ब्रह्म (भगवान्) के सहस्रनाम का रहस्य	आचार्य अरुण कुमार उपाध्याय (IPS Retd.)	86–96
15.	The Divinity of Rāma: A Theological Study of the *Rāma-Rahasya Upaniṣad*	Dr. Subhrajit Sen & Dr. Lokesh Mondal	97–104

सम्पादकीय

यह अङ्क न केवल अभूतपूर्व एवं महत्त्वपूर्ण सामग्री को साधकों के लिये उपलब्ध कराता है अपितु नई अनुसन्धानपरक रचनाओं के द्वारा तन्त्रशास्त्र की सार्वकालिक उपादेयता पर विचार करता है। हमें विश्वास है कि साधकवर्ग में इस अङ्क का भी यथापूर्व स्वागत होगा और यह उनके लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। जो साधक इस सारस्वत यज्ञ में लेख रूपी आहुति देना चाहते हैं, वे इमेल पर 'वर्ड डाकुमेन्ट' में भेज सकते हैं।

इस अंक के प्रथम आलेख 'मेरी (आत्मा की) की अन्तर्यात्रा' में राजस्थान पत्रिका के प्रधान सम्पादक एवं मधुसूदन ओझा वैदिक अध्ययन संस्थान के आचार्य गुलाब कोठारी ने शास्त्रीय आधारों पर प्रत्येक जीव की देहान्तर प्राप्ति की यात्रा का आध्यात्मिक विवेचना प्रस्तुत कर महनीय कार्य किया है। जीव अपने कर्मों के द्वारा अन्य शरीर को प्राप्त करता है, उसमें पितृगणों तथा देवगणों की महती भूमिका है। इसका वैदिक आधार इस आलेख में सुस्पष्ट है। अत: सादर प्रणाम।

द्वितीय लेख *'चरकसंहिता* का चिकित्साविषयक षड्धात्वात्मक पुरुष सिद्धान्त' में (म.म.राष्ट्रपतिसम्मानित) प्रो. बनवारी लाल गौड़ एवं डा. विश्वावसु गौड ने आयुर्वेद के आधार पर जीवात्मा का स्वरूप निर्धारण करने का अनुपम प्रयास किया है। पञ्चमहाभूतों के साथ चेतना धातु के संयोग को पुरुष कहा गया है। यह षड्धात्वात्मक है, जो मन सहित है। इसके अतिरिक्त केवल चेतना या चतुर्विंशतितत्त्वात्मक पुरुष का प्रतिपादन प्राप्त होता है परन्तु आयुर्वेद की दृष्टि से पञ्चभूतात्मक चेतनामय शरीर, अव्यक्त, महत् एवं पञ्च तन्त्रात्मक शरीर या धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्यात्मक अष्टरूपात्मक रूप भी गृहीत किया है। इनके विचिकित्सा सिद्धान्त में न्याय, सांख्य, योग तथा वेदान्त का सार गृहीत है तथा मूल व्याकरण दर्शन में धातु रूप में आत्मा का वर्णन है। अत: अत्यन्त वैज्ञानिक है। अत: आचार्य द्वयी के चरणों में सादर प्रणाम।

तृतीय आलेख 'निगमागम शास्त्र सम्मत शक्ति विमर्श' में डॉ. त्रिपुरसुन्दरीने शक्ति के स्वरूप की व्याख्या वैदिक तथा आगमिक आधारों पर सुन्दर रूप में की है। शक्ति से सम्बन्धित उत्कृष्ट कार्य किया है, एतदर्थ सादर साधुवाद।

चतुर्थ आलेख 'नाथ-पन्थ में शक्ति तत्त्व की भूमिका' में डॉ. रञ्जनलता ने शैव धर्म के नाथ पन्थ में शक्ति तत्त्व की भूमिका परिभाषित करने का वरेण्य कार्य किया है। शक्ति के पांच भेद— चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया की व्याख्या प्रस्तुत की है तथा कुण्डलिनी के भेदों की मीमांसा की है। अत: सादर साधुवाद।

पञ्चम आलेख 'अभिनवगुप्तस्य शक्तितत्त्वविमर्शः' में अमृता सेन गुप्ता ने आचार्य अभिनव गुप्त की दृष्टि में शक्ति तत्त्व पर सुन्दर विचार प्रस्तुत किया है। स्पन्द शक्ति एवं चिति के प्रकाश का सैद्धान्तिक निरूपण किया है तथा कर्तृत्व, ज्ञातृत्व एवं क्रिया शक्ति का भी विवेचन प्रस्तुत किया है। अत: सादर साधुवाद।

षष्ठ आलेख 'तन्त्रागमदृष्ट्या परावाचोऽनुशीलनम्' में डॉ. सुभाष पैन्यूली ने परा वाणी के स्वरूप की मीमांसा प्रस्तुत की है। मूलाधार में स्थित परा ही पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी रूप में व्यक्त होती है। इस उत्कृष्ट आलेख हेतु सादर साधुवाद।

सप्तम आलेख 'चतुर्विध वाणी की आगमिक व तान्त्रिक साधना का स्वरूप' में डॉ.हर्षदेवमाधव (प्रकाशानन्दनाथमहानित्याम्बा) ने चतुर्विध वाणी की आगमिक साधना के शास्त्रीय आधारों की दार्शनिक व्याख्या

प्रस्तुत करके महनीय कार्य किया है। शास्त्रोक्त उपासना विधि की सप्रमाण प्रस्तुति तथा विवेचना करके साधकों का परमोपकार किया है। अत: आचार्य श्री के चरणों में सादर अभिनन्दन।

अष्टम आलेख 'त्रिक दर्शन में वाक् तत्त्व : स्वरूप एवं विमर्श' में डॉ. रौशन सिंह ने त्रिक दर्शन के आधार पर वाक् तत्त्व का परिशीलन प्रस्तुत किया है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी के स्वरूप की विस्तार से विवेचना की है जिससे शोधार्थियों को दर्शन समझने में अत्यन्त लाभ होगा। अत: सादर धन्यवाद।

नवम आलेख '*स्तवचिन्तामणि* स्तोत्र में प्रतिपादित भक्ति का स्वरूप' में डॉ. रमेश चन्द्र नैलवाल ने कश्मीर के कवि भट्टनारायण की रचना *स्तवचिन्तामणि* में प्रतिपादित भक्ति के विविध आयाम— चिन्तन, मन्त्र, जप, अर्चन, ध्यान, भगवद् स्मरण, स्तुति, चित्रदर्शन, कीर्तन सेवा आदि की गम्भीर समीक्षा करके अनुपम कार्य किया है। एतदर्थ साधुवाद।

दशम आलेख में *'गोरक्ष पद्धति* में प्राणायाम एवं आसन का वैशिष्ट्य' में प्रो. गोपाल प्रसाद शर्मा ने हठयोग के ग्रन्थों के आधार पर प्राणायाम एवं आसन का शास्त्रीय स्वरूप उद्घाटित करके योग साधकों के लिए महनीय कार्य किया है। ग्रन्थाधारित विवेचन होने से यह आचार्यों की मूल दृष्टि को समझाने में सफल हुआ है। यहाँ ग्रन्थों के मूल उद्धरणों को प्रमाण रूप में उद्धृत कर उत्तम कार्य किया है। अत: सादर प्रणाम।

एकादश आलेख 'भारतीय दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में *विज्ञानभैरवतन्त्र* की मुख्य धारणाओं का अध्ययन' में आदित्य कुमार (शोधार्थी) ने विज्ञान भैरवतन्त्र की मुख्य धारणाओं — प्राणधारणा, शून्य धारणा, नादधारणा, मध्यबिन्दु धारणा के आधार पर अद्वैतभाव, साक्षीभाव तथा जागरूकता को परिभाषित किया है। अत: साधुवाद।

द्वादश आलेख '*नारदपाञ्चरात्र-भारद्वाजसंहिता* में परमनिःश्रेयस का उपाय : न्यासयोग एवं प्रपत्ति' में डॉ. छबिलाल न्यौपाने ने वैष्णव आगम में नारद पाञ्चरात्र की भारद्वाज संहिता के आधार पर परमनिश्रेयस के उपायभूत : न्यास योग एवं प्रपत्ति का साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया है। अत: सादर साधुवाद।

त्रयोदश आलेख 'भगवती तारा एवं छिन्नमस्ता का स्वरूप एवं साहित्य' में प्रो. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा भगवती तारा एवं छिन्नमस्ता के स्वरूप तथा साहित्य का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है।

चतुर्दश आलेख 'वैदिक विज्ञान में ब्रह्म (भगवान्) के सहस्रनाम का रहस्य' में आचार्य अरुण कुमार उपाध्याय ने सहस्रनाम का वैदिक, आगमिक एवं पौराणिक स्वरूप का गम्भीर आशय एवं रहस्य उद्घाटित कर अनुपम तथा महनीय कार्य किया है। अत: सादर प्रणाम व अभिनन्दन।

पञ्चदश आलेख 'The Divinity of Rāma: A Theological Study of the *Rāma-Rahasya Upaniṣad*' में डॉ. शुभ्रजित् सेन तथा डॉ. लोकेश मण्डल ने *रामरहस्य उपनिषद्* के आधार पर राम के नाम की दिव्यता एवं राम की महिमा को सप्रमाण प्रस्तुत कर अनुपम कार्य किया है। अत: सादर साधुवाद।

प्रो. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा
(शिवानन्दनाथ पूर्णाभिषिक्त)
सम्पादक
55 गोविन्दनगर, वैशाली नगर, जयपुर-302021
चलवाणी- 9413970601
rajendrasharmauniraj@gmail.com

मेरी (आत्मा की) अन्तर्यात्रा

आचार्य गुलाब कोठारी

गरुड़ पुराण में जीव की शरीर से बाहर की यात्रा का तात्त्विक वर्णन है। हमें केवल कथाओं को खोलने की आवश्यकता है। वैसे तो सभी पुराण इसी आधार पर सूत्रात्मक भाषा में तथा वैज्ञानिक धरातल पर लिखे हुए हैं। वेद-उपनिषद् भी आत्मा को ही केन्द्र में लिए हैं। पद्य में— गीता की भाँति ही। जीव की 84 लाख योनियों का यात्रा वृत्तान्त, प्रकृति और पुरुष का यज्ञात्मक स्वरूप और ब्रह्म के विस्तार का वर्णन मिलता है। हम धर्म निरपेक्ष शिक्षा व्यवस्था के उत्पाद हैं, संसाधन बने हुए हैं। तब हमें अपने मूल स्वरूप का भान भी कैसे हो? आज भी मैं अपने शरीर को आधार बनाकर ही जीवन के कार्यकलाप सम्पन्न करता हूँ। किसी ने नहीं बताया मुझे कि मैं शरीर नहीं, शरीर का स्वामी हूँ। दिखाई नहीं देता। स्वयं को भी नहीं। स्वयं अपने लिए भी मैं अनुभूति का विषय हूँ। अत: जाग्रत् अवस्था में अपनी प्रत्येक योनि की यात्रा का साक्षी रहता हूँ। अन्य शरीरों में मेरे लिए अभिव्यक्ति का निषेध है। स्वतन्त्र कर्म करने पर निषेध लागू है। बस, प्रकृति के आदेश के अनुरूप भोग करना शेष रहता है।

सभी कर्मों के यथायोग्य फल भोगकर मैं चन्द्रमा पर लौटा। ब्रह्मा 'कृष्णश्च नोऽवतु- चन्द्रमा वै ब्रह्मा कृष्ण'— अर्थात् सूर्य की तरह चन्द्र पिण्ड भी कृष्ण है। न अग्नि में प्रकाश है, न सोम में प्रकाश है। प्रकाश उत्पन्न होता है दोनों के समन्वय से। जन्म प्रक्रिया में स्त्रैण योषाग्नि अपनी जगह स्थित रहता है, पौरुष सोम आहुत होता है। अत: सोम को ही प्रकाश का प्रवर्तक कहा है। *छान्दोग्य उपनिषद्* की पञ्चाग्नि विद्या के अनुसार श्रद्धा-सोम-वर्षा-अन्न-शुक्र रूप में श्रद्धा सोम ही क्रमश: द्यु-पर्जन्य-पृथ्वी-पुरुष-योषित् पाँचों अग्नियों में आहुत होता हुआ प्रजा की उत्पत्ति का कारण बनता है।

अग्नित्रयी— अग्नि-यम-आदित्य-से वैश्वानर अग्नि उत्पन्न होता है। यह तापधर्मा है। पुरुषाग्नि है। द्यु-पर्जन्य-पृथ्वी-वैश्वानर सत्याग्नि हैं। पांचवा योषित् अग्नि ऋत रूप है। इस ऋताग्नि से ही स्त्री का आत्मा बनता है। हर समय इसमें ऋताग्नि उपलब्ध नहीं होती। ऋतुकाल में ही इस ऋताग्नि का विकास होता है। यही ऋतुमति स्त्री सोमाहुति ग्रहण करके प्रजा उत्पन्न करती है।

मैं जब चन्द्रमा पर पहुँचा तो उसके अन्धेरे भाग में पहुँचा जो कि पितरों का स्थान है। वहाँ से समयानुसार पर्जन्य के साथ यात्रा आरम्भ हुई। पर्जन्य को बरसना है। यह भी प्रकृति तय करती है कि कहाँ बरसना है? मुझे किस भूखण्ड पर पृथ्वी में प्रवेश करना है— बीज रूप में। पृथ्वी अग्नि है, जल सोम है। जल के माध्यम से मैं भी धंस गया एक खेत में, जो मुझे लेने के लिए तैयार किया जा चुका था। पृथ्वी की महद्

योनि में जाकर— जल की सहायता से अंकुरित हो जाना था। कृष्ण के शब्द हैं-'मम योनिर्महद् ब्रह्म...'। मैं भी ब्रह्मांश ही तो हूँ। महद् में ही माया से युक्त होकर मातरिश्वा वायु की सहायता से आहुत होता हूँ। अन्न ही मेरा शरीर बना। अन्न के सहारे पुरुष शरीर में— वैश्वानर में— आहुत हुआ। शरीर के धातुओं के साथ बढ़ता हुआ शुक्र में समाहित हो गया। शुक्र से ही ओज और मन बनता है।

पुरुष शरीर में आत्मा व्याप्त रहता है। इसी में उसके पूर्वजों के अंश व्याप्त रहते हैं। मुझे पुंभ्रूण के रूप में शुक्राणु के शुक्र में प्रतीक्षा करनी पड़ी। अणुरूप बीज था। मुझे नहीं मालूम आगे का यात्रा पथ। बस, प्रतीक्षा। सोचता हूँ कि कितने प्राणी होंगे जो इतनी बार अग्नि कुण्ड से गुजरते होंगे! कितना कठिन है मानव शरीर धारण करना। वैश्वानर से बाहर आते ही डाल दिया रक्त नदी में। क्या पाप किया था मैंने? मांस के पर्वतों में फंसा रहा। अस्थि-मज्जा के शिलाखण्डों का पोषण करता हुआ यहाँ— शुक्र में— आ पहुँचा। मेरे चारों ओर लाखों-शुक्राणु हैं प्रतीक्षा में। किसकी? नहीं मालूम। हाँ, लगता है क्षीर सागर का शीतल निवास है। मेरे भीतर ब्रह्म है। जिस शरीर में स्थित हूँ, कोई बड़ा ब्रह्माण्ड है।

और अचानक एक दिन शरीर में तेज भूकम्प के झटके लगे। सम्पूर्ण शुक्राणु-सेना में खलबली मच गई। किसी बाहरी शक्ति ने मानो शरीर में प्रवेश किया- जैसे कोई दुर्गा। सम्पूर्ण शरीर से आत्मा के अंश बंटोरे और लेकर मेरे पास आई। बोली चलना है— लम्बी यात्रा पर। केवल मुझे ही बोली। इतने में तो एक आंधी में हम उड़ गए। हवा के तेज दबाव से बाहर तो निकले, किन्तु वहाँ फिर एक कुण्ड था। लगभग पूरी सेना भस्म हो गई। जल बाहर की ओर बह निकला। मैं और वह शक्ति अपने सामान के साथ बच निकले। हवा अभी भी चल रही थी। हम लम्बी गुफा से निकल रहे थे।

यहाँ गुफा में ही मेरा शरीर भी छूट गया। शक्ति ने मुझे नए मित्र से मिला दिया। हम एक हो गए। हवा से एक बुद्बुद् उठा हम दोनों एक साथ बन्द हो गए। केन्द्र में रहने लगे। वह तो हृदय था, बुद्बुद् का। वहीं पुरुष के आकृति अंश, जीवात्मा (मैं) तथा ब्रह्मांश सभी एकत्र हो गए। साथ-साथ रहने लगे। मैं जहाँ से आया, वहाँ से भिन्न स्थिति में था। खाने-पीने की व्यवस्था भिन्न थी। मैं छटपटा रहा था, बाहर निकलने को। कोई संभावना नहीं थी। कहते हैं संसार में बार-बार आवर्तमान महान् आत्मा ही है। यही सत्त्व लक्षण परात्पर है। यही जल है, किन्तु इन्द्रियों से दिखता नहीं है। रूप-रस-गन्ध आदि नहीं है। क्षेत्रज्ञ में पहुँचकर निरात्म हो जाता है। महान् आत्मा तीन प्रकार का होता है— सत्त्व, रज, तम रूप से। सत्त्व विशुद्ध होता है। उसके चारों ओर रज और तम होते हैं। वह जब विभूतियां करने लगता है तब ये दोनों सम्बन्ध उसे क्षेत्रज्ञ से अलग कर देते हैं। (निरुक्त)। माया से घिरा हुआ जीव मिथ्या दर्शन के कारण मैं स्रष्टा हूँ, मैं द्रष्टा हूँ, मैं ही विभक्ता हूँ, ऐसा समझने लगता है। महाभूत आकाश से वायु तथा वायु से प्राणों का प्रकाश है। तेज से आंख, जलों से स्नेह तथा पृथ्वी से मूर्ति बन जाती है। पुरुष में पृथ्वी के आठ गुण रहते हैं। तीन मां से तथा तीन पिता से

मिलते हैं। माँ से हड्डी-स्नायु-मज्जा निर्मित होते हैं। पिता से त्वचा, मांस और रुधिर भाग बनता हैं। मां से खाना और पीना भी प्राप्त होता है।

श्रुति कहती है— तू ही स्त्री है, तू ही पुरुष। ''स्त्रिय: सतीस्तां उ मे पुंस आहु:'' (ऋ. 1.164.16)। स्त्रीत्व और पुरुषत्व वस्तुत: है नहीं। वह जैसे-जैसे शरीर को पाता है वैसे-वैसे नाम से पुकारा जाता है। निरुक्त आगे कहता है— पुरुष जो जो अनुरोध करता है, कार्य करता है, वैसा ही हो जाता है। यदि धर्म का अनुरोध करता है तब देवत्व पा जाता है। यदि ज्ञान का अनुरोध करता है तो अमर बन जाता है। काम के अनुरोध से गिर जाता है। वैसी ही योनि प्राप्त करता है।

निरुक्त मेरी यात्रा का वर्णन भी करता है। शुक्र-रज की मात्रा से मुझे पुरुष-स्त्री शरीर मिलेगा। दोनों के बराबर होने से नपुंसक। दोनों के संयोग से बन्धन होता है। एक रात के बाद कलल (गर्भ) हो जाता है। पांच रातों से बुलबुला बन जाता है। सात रातों के बाद पट्ठों के रूप का हो जाता है। चौदह रातों के बाद उसे अर्बुद कहने लगते हैं। पच्चीस रातों में स्वयं में घन हो जाता है। एक महीने में कठोर हो जाता है। दो महीने में सिर बन जाता है। तीन महीनों में गर्दन निकल आती है। चार महीनों में चमड़ी निकल आती है। पाँच महीनों में नाखून और रोएं निकल आते हैं। छठे महीने मुंह, नाक, आंख और कान हो जाते हैं। सातवें में चलन समर्थ हो जाता है। आठवें में बुद्धि-युक्त हो जाता है। नौवें महीने में सर्वांग पूर्ण हो जाता है। जैसा कि कहा जाता है— ''मैं मरा, फिर पैदा हुआ। फिर पैदा हुआ, पैदा होकर फिर मरा। नाना योनियों में रहा। भोजन कई प्रकार के खाये पीये। कई प्रकार के स्तन, माताएँ, पिता, मित्र देखे। उल्टा लटका हुआ मैं इस प्रकार से पीडित हूँ। उद्धार चाहता हूँ।"

एक सौ आठ जोड़ शरीर में हैं। आठ कपालों वाला सिर होता है। सोलह पल चर्बी और नौ सौ स्नायु हैं। पुरुष के 107 मर्म स्थान होते हैं। साढ़े चार करोड़ रोएं हैं। हृदय के आठ भाग हैं और जीभ के बारह। अण्डकोष आठ पक्षों वाले हैं। मूत्रेन्द्रिय-शौचेन्द्रिय खाने-पीने से सिक्त होते हैं। विद्या और कर्म साथ जाते हैं। अज्ञान-अन्धकार के कारण भूख-प्यास, क्रोध, लोभ, मोह, भय आदि द्वन्द्वों से तिरस्कृत रहता है। जीव एक बड़ी भूमिका की तरह पलक मारते ही इस पार्थिव शरीर से निकलकर तैजस देह प्राप्त कर लेता है। कर्मफल भोगकर फिर इसी लोक में पहुँच जाता है।

प्रधान सम्पादक
राजस्थान पत्रिका, केशरगढ़, जयपुर (राजस्थान)
gulabkothari@epatrika.com

चरकसंहिता का चिकित्साविषयक षड्धात्वात्मक पुरुष सिद्धान्त

(म.म.राष्ट्रपतिसम्मानित) प्रो. बनवारी लाल गौड़ एवं डा. विश्वावसु गौड

आयुर्वेद केवल रोगोपचार का विज्ञान नहीं है, अपितु जीवन, चेतना तथा मानव-अस्तित्व का भी विज्ञान है। किसी भी चिकित्सा-पद्धति की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह जिस जीव या व्यक्ति का उपचार कर रही है, उसके स्वरूप को किस प्रकार समझती है। इसी कारण आयुर्वेद के आचार्यों ने रोग, स्वास्थ्य, चिकित्सा, आयु तथा मोक्ष जैसे समस्त विषयों के पूर्व पुरुषके स्वरूप का विचार किया है। आयुर्वेद में पुरुष का विवेचन केवल दार्शनिक जिज्ञासा की पूर्ति के लिए नहीं किया गया, अपितु चिकित्सा के आधारभूत अधिष्ठान को स्पष्ट करने के लिए किया गया है।

चरकसंहिता के शारीरस्थान में आचार्य चरक ने पुरुष के स्वरूप का विशद निरूपण करते हुए कहा है—

खादयश्चेतनाषष्ठा धातवः पुरुषः स्मृतः।
चेतनाधातुरप्येकः स्मृतः पुरुषसंज्ञकः॥ (च.शा.1/16)

इस संक्षिप्त सूत्र में आयुर्वेद के सम्पूर्ण मानव-दर्शन का सार निहित है। आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी इन पञ्चमहाभूतों के साथ चेतनाधातु अर्थात् आत्मा के संयोग से जो जीवित सत्ता निर्मित होती है, वही पुरुष कहलाती है। यहाँ पुरुष का तात्पर्य केवल नर अथवा मनुष्य नहीं है, अपितु चेतन जीवधारी से है। यही पुरुष आयुर्वेद की चिकित्सा का विषय है, क्योंकि रोग, स्वास्थ्य, सुख, दुःख, ज्ञान, अज्ञान तथा समस्त जैविक और मानसिक क्रियाएँ इसी में घटित होती हैं।

आयुर्वेद का यह दृष्टिकोण भारतीय दर्शन की अन्य परम्पराओं से भी सम्बद्ध है। *चरकसंहिता* के प्रसिद्ध टीकाकार चक्रपाणिदत्त ने स्पष्ट कहा है कि यहाँ वर्णित षड्धात्वात्मक पुरुष वैशेषिक दर्शन में स्वीकृत पुरुष के अनुरूप है, वे कहते हैं कि-

खादयः "खंवायुरग्निरापःक्षितिस्तथा" इतिवक्ष्यमाणाः; चेतनाषष्ठा इत्यत्र चेतनाशब्देन चेतनाधारः समनस्क आत्मा गृह्यते; खादिग्रहणेन चेन्द्रियाणि खादिमयान्यवरुद्धानि। अयं च वैशेषिकदर्शनपरिगृहीतश्चिकित्साशास्त्रविषयः पुरुषः; अयमेव "पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुषः" (सु.सू.1) इत्यनेनसुश्रुतेनाप्युक्तः स्मृत इति भाषया पूर्वाचार्याणामप्ययं पुरुषशब्दवाच्योऽभिप्रेतो नास्मत्कल्पित इति दर्शयति। पुरि शरीरे शेते इति व्युत्पत्त्या य आत्मा पुरुषशब्देनोच्यते तमाह चेतनेत्यादि अत्र पुरुष इति कर्तव्ये यत् 'पुरुषसञ्ज्ञक' इति करोति तेन न चेतनाधातुरूपः पुरुषश्चिकित्सायमभिप्रेतः, किन्तु शास्त्रान्तरव्यवहारानुरोधादिहाप्ययं पुरुषशब्देन सञ्ज्ञित इति दर्शयति;

चिकित्साविषयस्तु षड्धातुक एव पुरुषः, अत एव तत्र सञ्ज्ञितग्रहणं न कृतम्। अयं च पुरुषशब्दो गवादावपि षड्धातुसमुदाये यद्यपि वर्तते, तथाऽपि सर्वप्रधानेनर एवविशेषेण वर्तते; तेन नातिप्रसिद्धो गवादौ पुरुषशब्दः।।

— (च.शा.1/16 पर चक्रपाणिः)

अर्थात् 'खादयः' इस वचन का तात्पर्य है आगे शारीरस्थान1/27 में कहे जाने वाले 'खं वायुरग्निरापःक्षितिस्तथा' (अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथिवी)। 'चेतनाषष्ठाः' इस (पद) में चेतना शब्द से चेतना के आधार समनस्क (मनसहित) आत्मा का ग्रहण किया जाता है। तथा खादिग्रहण (ख आदि के ग्रहण) से खादिमय (आकाश आदि युक्त) इन्द्रियाँ अवरुद्ध (अन्तर्भूत) हो जाती हैं। और यहाँ (आत्मा शब्द से) वैशेषिक दर्शन में स्वीकृत चिकित्सा-शास्त्र (आयुर्वेदशास्त्र) का विषय 'पुरुष' अभिप्रेत है, यह ही "अस्मिञ्छास्त्रे पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इत्युच्यते।" (सुश्रुतसंहिता शारीर. 1/22) अर्थात् 'पञ्चमहाभूतात्मक शरीरी (चेतनाधातु, आत्मायुक्त मन) का समवाय पुरुष होता है' इस सुश्रुत वचन द्वारा भी कहा गया है। 'स्मृतः' इस कथन से पूर्व आचार्यों के भी यह पुरुष शब्द का अर्थ अभिप्रेत रहा है, यह (पुरुष शब्द का अर्थ) हमारे द्वारा कल्पित नहीं है, यह दर्शाते हैं।' पुरि शरीरे शेते' (अर्थात् जो शरीर में निवास करता है वह पुरुषहै) इस व्युत्पत्ति के द्वारा जो आत्मा पुरुष शब्द से कहा जा रहा है उसका कथन करते हैं -चेतनाधातुरप्येकःस्मृतःपुरुषसञ्ज्ञकः। इस (प्रसङ्गः) में 'पुरुष' यह वाच्य होने पर जो 'पुरुषसंज्ञकः' यह पाठ करते हैं (पढते हैं), इससे चेतनाधातुरूप पुरुष आयुर्वेद में अभिप्रेत नहीं है, किन्तु दूसरे शास्त्रों में व्यवहार (व्यवसाय, प्रथा, आचरण) के अनुरोध (आग्रह) से यहाँ भी यह 'पुरुष' शब्द से सञ्ज्ञित (नामयुक्त, नामित) है, यह दर्शाते हैं, चिकित्सा का विषय (क्षेत्र, विषयवस्तु, पदार्थ वस्तु) षड्धातुक (छः धातुओं का समूह) ही 'पुरुष' है, इसीलिए वहाँ 'सञ्ज्ञित' का ग्रहण नहीं किया गया है (सञ्ज्ञित नहीं कहा गया है)। और इस पुरुष शब्द का व्यवहार षड्धातुसमुदाय गौ आदि में भी यद्यपि किया जाता है तथापि (यह शब्द) सब में प्रधान पुरुष (नर, मनुष्य) में ही विशेषरूप से व्यवहृत होता है। अतः पुरुष शब्द 'गौ' आदि के अर्थ में अधिक प्रसिद्ध नहीं है।

सुश्रुताचार्य के "पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुषः" इस कथन से भी यही पुरुष अभिप्रेत है। इससे स्पष्ट होता है कि आयुर्वेद में पुरुष की संकल्पना किसी एक दर्शन की परिधि में सीमित नहीं है, अपितु यह भारतीय दार्शनिक चिन्तन की अनेक धाराओं का समन्वित एवं व्यावहारिक रूप है।

चरकसंहिता में पुरुष की त्रिविध कल्पना

चरकसंहिता में पुरुष का विचार एकरूप नहीं है, अपितु विभिन्न दृष्टियों से उसका निरूपण किया गया है। आचार्य चरक ने पुरुष को कभी षड्धात्वात्मक, कभी चेतनाधातुरूप एक तथा कभी चतुर्विंशतितत्त्वात्मक कहा है। प्रथम दृष्टि से देखने पर ये भिन्न-भिन्न मत प्रतीत होते हैं, किन्तु गम्भीर अध्ययन से ज्ञात होता है कि ये एक ही सत्य के विविध आयाम हैं।

सबसे पहले आचार्य कहते हैं—

खादयश्चेतनाषष्ठा धातवः पुरुषः स्मृतः।

यहाँ पुरुष को छः धातुओं का समवाय कहा गया है। इन छःधातुओं में पाँच महाभूत तथा छठा चेतनाधातु है। चक्रपाणि इस श्लोक की व्याख्या करते हुए बताते हैं कि "चेतना" शब्द से केवल आत्मा ही अभिप्रेत नहीं है, अपितु मन के सहित आत्मा का ग्रहण किया गया है। साथ ही, आकाशादि महाभूतों के ग्रहण से उनसे निर्मित इन्द्रियों का भी अन्तर्भाव हो जाता है। इस प्रकार यह षड्धात्वात्मक पुरुष वस्तुतः सम्पूर्ण जीवित शरीर का प्रतिनिधित्व करता है।

चक्रपाणि आगे विशेष रूप से लिखते हैं—

चिकित्साविषयस्तु षड्धातुक एव पुरुषः।

अर्थात् आयुर्वेद की चिकित्सा का विषय यही षड्धात्वात्मक पुरुष है। रोग इसी में उत्पन्न होते हैं, दोष-धातु-मल इसी में स्थित होते हैं तथा चिकित्सा का प्रयोजन भी इसी पुरुष के स्वास्थ्य की पुनः स्थापना है। इस प्रकार आयुर्वेद का पुरुष न तो केवल आत्मा है और न ही केवल शरीर, अपितु शरीर, इन्द्रिय, मन एवं आत्मा का एक समन्वित अस्तित्व है।

चेतनाधातुरूप पुरुष की कल्पना

षड्धात्वात्मक पुरुष का वर्णन करने के पश्चात् आचार्य चरक कहते हैं—

चेतनाधातुरप्येकः स्मृतः पुरुषसंज्ञकः।

यहाँ केवल चेतनाधातु अर्थात् आत्मा को पुरुष कहा गया है। किन्तु चक्रपाणि इस पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण टिप्पणी करते हैं। वे कहते हैं कि यदि आयुर्वेद में आत्मा को ही पुरुष मानना अभिप्रेत होता तो "पुरुषः" शब्द पर्याप्त था, किन्तु आचार्य ने "पुरुषसंज्ञकः" कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि आत्मा को अन्य शास्त्रों में पुरुष कहा जाता है, इसलिए यहाँ भी उस पर पुरुष-संज्ञा का आरोप किया गया है, परन्तु आयुर्वेद की चिकित्सा का विषय वह नहीं है।

इस प्रकार *चरकसंहिता* आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करती है, किन्तु चिकित्सा-विज्ञान की दृष्टि से आत्मा को अकेले पर्याप्त नहीं मानती। रोग शरीर और मन में उत्पन्न होते हैं, अतः चिकित्स्य पुरुष वह है जिसमें चेतना एवं भौतिक तत्त्व दोनों का समन्वय हो।

चतुर्विंशतितत्त्वात्मक पुरुष और साङ्ख्यदर्शन

षड्धात्वात्मक पुरुष का निरूपण करने के पश्चात् आचार्य चरक पुरुष का एक अन्य स्वरूप प्रस्तुत करते हैं—

पुनश्च धातुभेदेन चतुर्विंशतिकः स्मृतः।
मनो दशेन्द्रियाण्यर्थाः प्रकृतिश्चाष्टधातुकी॥ (च.शा. 1/17)

यहाँ पुरुष को चौबीस तत्त्वों के समूह के रूप में स्वीकार किया गया है। प्रथम दृष्टि में यह प्रतिपादन साङ्ख्यदर्शन के पुरुष से साम्य रखता हुआ प्रतीत होता है, किन्तु गम्भीर विवेचन करने पर ज्ञात होता है कि आयुर्वेद ने साङ्ख्य के सिद्धान्त को यथावत् स्वीकार नहीं किया है, अपितु उसे चिकित्साशास्त्र की आवश्यकता के अनुसार रूपान्तरित किया है।इस विषय में चक्रपाणिदत्त लिखते हैं—

"षड्धातुरूपमेव पुरुषं पुनः साङ्ख्यदर्शनभेदाच्चतुर्विंशतिकभेदेनाह— पुनश्चेत्यादि।"

अर्थात् पूर्वोक्त षड्धात्वात्मक पुरुष को ही साङ्ख्यदर्शन के आधार पर चतुर्विंशतितत्त्वात्मक रूप में कहा गया है।

चक्रपाणि आगे साङ्ख्यकारिका का प्रसिद्ध सिद्धान्त उद्धृत करते हैं—

"**मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।**
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥" **(*साङ्ख्यकारिका*-3)**

साङ्ख्य के अनुसार एक मूलप्रकृति है, सात प्रकृति-विकृतियाँ हैं, सोलह विकार हैं तथा पुरुष न प्रकृति है और न विकृति। इस प्रकार साङ्ख्य में कुल पच्चीस तत्त्व स्वीकार किए गए हैं।

किन्तु आयुर्वेद चौबीस तत्त्वों की ही चर्चा करता है। यह अन्तर क्यों है? इस प्रश्न का समाधान स्वयं चक्रपाणि करते हैं—

"तथाऽपीह प्रकृतिव्यतिरिक्तं चोदासीनं पुरुषमव्यक्तत्वसाधर्म्यादव्यक्तायां प्रकृतावेव प्रक्षिप्य अव्यक्तशब्देनैव गृह्णाति; तेन चतुर्विंशतिकः पुरुष इत्यविरुद्धम्।"
—(च.शा.1/17 पर चक्रपाणि)

यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कथन है। चक्रपाणि के अनुसार साङ्ख्य का जो उदासीन, साक्षी एवं सूक्ष्म पुरुष है, उसे आयुर्वेद अव्यक्त के साथ साधर्म्य होने के कारण अव्यक्त प्रकृति में ही अन्तर्भूत मान लेता है। परिणामतः पृथक् पुरुष की गणना नहीं की जाती और सङ्ख्या पच्चीस के स्थान पर चौबीस रह जाती है।

यहाँ आयुर्वेद का दृष्टिकोण पूर्णतः व्यावहारिक है। चिकित्सा के लिए उस सूक्ष्म, उदासीन, निर्लेप पुरुष की पृथक् चर्चा विशेष उपयोगी नहीं है। इसी कारण चक्रपाणि आगे लिखते हैं—

"उदासीनस्य हि सूक्ष्मस्य भेदप्रतिपादनमिहानतिप्रयोजननमिति न कृतम्।"
— (च.शा.1/17 पर चक्रपाणि)

अर्थात् उस सूक्ष्म एवं उदासीन पुरुष का पृथक् विवेचन यहाँ विशेष प्रयोजनयुक्त नहीं है, इसलिये नहीं किया।

यह कथन आयुर्वेद की वैज्ञानिक दृष्टि को प्रकट करता है। जहाँ साङ्ख्य का उद्देश्य मोक्षशास्त्र है, वहीं आयुर्वेद का प्राथमिक उद्देश्य स्वास्थ्य और चिकित्सा है तथा द्वितीयस्वरूपक उद्देश्य मोक्ष है। अतः आयुर्वेद उन तत्त्वों को प्रमुखता देता है जिनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष जीवन और चिकित्सा से है।

सुश्रुतसंहिता में पुरुष का स्वरूप

चरक की भाँति सुश्रुताचार्य भी शरीर एवं चेतना के समन्वित स्वरूप को ही पुरुष मानते हैं। चक्रपाणि ने स्वयं स्वीकार किया है—

"अयमेव पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुषः इत्यनेन सुश्रुतेनाप्युक्तः।"

अर्थात् यही षड्धात्वात्मक पुरुष सुश्रुताचार्य द्वारा भी प्रतिपादित है।

सुश्रुतसंहिता के सर्वभूतचिन्ताशारीर अध्याय में सृष्टि, पुरुष तथा जगत् के मूल कारण का अत्यन्त गम्भीर विवेचन मिलता है। वहाँ कहा गया है—

"सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः सम्भवहेतुरव्यक्तं नाम।"

— (सु. शा. 1/3)

यहाँ अव्यक्त को समस्त सृष्टि का मूल कारण कहा गया है। वह स्वयं अकारण है, किन्तु सम्पूर्ण जगत् का कारण है। उसमें सत्त्व, रजस् और तमस् तीनों गुण विद्यमान हैं।

डल्हणाचार्य इस पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं—

"अव्यक्तं नाम प्रकृतिः प्रधानं मूलप्रकृतिरिति पर्यायाः।"

अर्थात् अव्यक्त, प्रकृति, प्रधान तथा मूलप्रकृति— ये सभी एक ही तत्त्व के पर्याय हैं।

यह व्याख्या साङ्ख्यदर्शन के साथ पूर्ण सामञ्जस्य रखती है, क्योंकि वहाँ भी प्रकृति को ही समस्त सृष्टि का मूल कारण माना गया है।

डल्हण के अनुसार अष्टरूप अव्यक्त

सुश्रुत के उक्त श्लोक में अव्यक्त को "अष्टरूप" कहा गया है। इस विषय में विभिन्न मत प्राप्त होते हैं। डल्हणाचार्य लिखते हैं—

अष्टरूपमित। प्रकृतिभावेनैवाव्यक्तं महानहङ्कारः पञ्चतन्मात्राणीत्यष्टौ रूपाणि यस्य तत्तथा; प्रकृतित्वं चाष्टानामव्यक्तादीनां साङ्ख्येऽपि प्रतिपादितमस्ति। शिलापुत्रकन्यायेन रूपत्वंरूपित्वं चाव्यक्तस्य। अव्यक्तं महानहङ्कारः पञ्चभूतानीत्यष्टौ रूपाणीत्येके; अन्ये तु धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्याण्यष्टौ रूपाण्याहुः; अपरे तु मनोबुद्ध्यहङ्कारमहाभूतान्याहुः।

— (सु. शा. 1/3 पर डल्हण)

इसका भावार्थ यह है कि अव्यक्त, महत्, अहङ्कार तथा पञ्चतन्मात्राएँ— ये आठ रूप हैं।

किन्तु अन्य आचार्यों ने अष्टरूप की भिन्न-भिन्न व्याख्या भी की है। कुछ ने पञ्चमहाभूत, बुद्धि, अहङ्कार और अव्यक्त को अष्टरूप कहा है, जबकि अन्य विद्वानों ने धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य तथा उनके विपरीत अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य को अष्टरूप माना है। कुछ विद्वानों ने मन, बुद्धि, अहङ्कार एवं पञ्चमहाभुतों को अष्टरूप कहते हैं।

यह विविधता भारतीय दर्शन की समृद्ध व्याख्यात्मक परम्परा को दर्शाती है।

अव्यक्त की दार्शनिक व्याख्या

डल्हण अव्यक्त की विशेषता बताते हुए कहते हैं—

"न व्यज्यतेस्मेत्यव्यक्तं; प्रकृतिः प्रधानं मूलप्रकृतिरिति यावदव्यक्तपर्यायाः। तत् अव्यक्तम्; एकं शिलापट्टवदविवेच्यावयवं, न पुनस्त्रिदण्डवद्विवेच्यावयवम्। क्षेत्रज्ञानां कर्मपुरुषाणाम्। अधिष्ठानं शरीरभावाय विषयः। अत्रोपमानमाह-समुद्र इवेत्यादि। उदकभवा औदका नदीनदसरस्तडागादयः; अन्ये त्वौदकाभावाश्चराचरामत्स्यपद्मादय इत्याहुः।।"

— (सु. शा. 1/3 पर डल्हण)

जो प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त नहीं होता, वही अव्यक्त है।यहाँ अव्यक्त का अर्थ केवल अदृश्य होना नहीं है, अपितु वह कारणावस्था है जिसमें सम्पूर्ण सृष्टि अप्रकट रूप से विद्यमान रहती है। साङ्ख्य में इसी को मूलप्रकृति कहा गया है।

डल्हण एक अत्यन्त सुन्दर उपमा देते हैं। वे कहते हैं कि अव्यक्त का अपने विकारों से वही सम्बन्ध है जो शिलाखण्ड का उसके टुकड़ों से होता है। मूल शिला और उसके खण्डों में तत्त्वतः कोई भेद नहीं होता। इसी प्रकार अव्यक्त और उससे उत्पन्न तत्त्वों में भी मौलिक एकता है।

यह विचार आगे चलकर वेदान्त के कारण-कार्य-अभेद सिद्धान्त की भी स्मृति कराता है।

वैशेषिक दर्शन और आयुर्वेद का पुरुष

चक्रपाणि स्पष्ट रूप से लिखते हैं—

"अयं च वैशेषिकदर्शनपरिगृहीतश्चिकित्साशास्त्रविषयः पुरुषः।"

— (च.शा.1/16 पर चक्रपाणिः)

यह कथन विशेष ध्यान देने योग्य है। इससे ज्ञात होता है कि आयुर्वेद का चिकित्स्य पुरुष वैशेषिक दर्शन के आत्मा-स्वीकार से भी प्रभावित है।

वैशेषिक में आत्मा एक स्वतन्त्र द्रव्य है। ज्ञान, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख और दुःख उसी में आश्रित होते हैं। जब आत्मा शरीर के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है तभी जीवन की विविध क्रियाएँ सम्भव होती हैं।

आयुर्वेद इस आत्मा को स्वीकार तो करता है, किन्तु उसे पञ्चमहाभूतात्मक शरीर से पृथक् नहीं करता। यही कारण है कि चिकित्सा का विषय आत्मा नहीं, अपितु आत्मायुक्त शरीर है।

वेदान्त और आयुर्वेद का पुरुष

वेदान्त के अनुसार आत्मा ही परम सत्य है—

"अहं ब्रह्मास्मि।" "तत्त्वमसि।"

वेदान्त का लक्ष्य आत्मा और ब्रह्म की अभिन्नता का साक्षात्कार है। वहाँ शरीर मिथ्या अथवा अनित्य माना जाता है।इसके विपरीत आयुर्वेद शरीर को उपेक्षित नहीं करता। आयुर्वेद के लिए शरीर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों का साधन है। इसलिए आत्मा और शरीर दोनों की समन्वित सत्ता को पुरुष कहा गया है।

आयुर्वेद की मौलिकता-

भारतीय दर्शन के विविध मतों का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि आयुर्वेद ने किसी एक दर्शन का अन्धानुकरण नहीं किया। उसने साङ्ख्य से तत्त्वमीमांसा, वैशेषिक से आत्मा की सत्ता, योग से पुरुष-चेतना और वेदान्त से आत्मतत्त्व की गरिमा को स्वीकार किया, किन्तु इन सबको चिकित्सा की दृष्टि से पुनः परिभाषित किया।

इसीलिए चक्रपाणि का यह वचन अत्यन्त सारगर्भित प्रतीत होता है—

"चिकित्साविषयस्तु षड्धातुक एव पुरुषः।"

यही वाक्य आयुर्वेद के सम्पूर्ण पुरुष-विज्ञान का केन्द्रबिन्दु है।

पूर्व कुलपति,
डा.एस.आर.राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जोधपुर
एसोसियेट प्रोफेसर, एम. जे. एफ. आयुर्वेद महाविद्यालय,
हाड़ोता, जयपुर (राजस्थान)
पत्राचार हेतु पता— 80 चम्बल मार्ग, सेन कालोनी, प्रेमनगर,
झोटवाड़ा (जयपुर)302012
दूरभाष : 9829844430

निगमागम शास्त्र सम्मत शक्ति विमर्श

डॉ. त्रिपुरसुन्दरी

''निगम्यते ज्ञायते अनेनेति निगमो वेद:'' ऐहिक एवं पारलौकिक श्रेयस का साधनभूत शब्दात्मक ज्ञानराशि वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, वेदाङ्ग, सूत्र, आगम तन्त्र एवं पुराणों पर विहङ्गम दृष्टिपात करने पर यह परिलक्षित होता है कि इन शास्त्रों में शक्ति सम्बद्ध तथ्य बहुतायत है जिसका संकलन इस अल्पस्वरूप शोध पत्र में सम्भव नहीं है कुछ अंशों में संक्षिप्त रूप से नाम निर्देश एवं आवश्यक विवरण प्रस्तुति का मेरा प्रयास है।

जगत् के निमित्त और विवर्तोपादान कारण सच्चिदानन्द परब्रह्म की स्वाभाविक जो पराशक्ति है वही शक्ति तत्त्व भगवती हैं वैदिक वाङ्मय में कहा गया —

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते।[1] **(श्वेता0 6/8)**

ब्रह्म की यह पराशक्ति नाना प्रकार की सुनी जाती है। *अमरकोश* में 'शक्ति' शब्द के अनेक अर्थ बताए गये – 'कासू सामर्थ्य' वो शक्ति[2] शक्ति शब्द शक्' धातु से क्तिन् प्रत्यय के योग से निष्पन्न है। *ऋग्वेद* में शक्ति स्वरूपा की अदिति, शची, ऊषा, सूर्य देवी, वाणी और लक्ष्मी के रूप में गौरवमयी स्तुति उपलब्ध होती है। कहीं माता, कहीं कुमारी तो कहीं पत्नी रूप में है। *ऋक् संहिता* के दशम मण्डल का 125वाँ सूक्त ''देवी सूक्त'' है, जिसमें अम्भृण ऋषि की पुत्री वाक् ने भावापन्न होकर कतिपय ऋचाओं का दर्शन किया, जिसे वाक् सूक्त भी कहा जाता है।[3] परब्रह्म करुणामयी मातृशक्ति के रूप में ''ममयोनिरप्स्वन्त: समुद्रे''।[4] (ऋ0 10/123/17) मैं करुणामय हूँ। क्योंकि मेरा आश्रय करुणा का समुद्र ब्रह्म है और इस करुणा-जल से ओतप्रोत जो ब्रह्म है वह मैं ही हूँ। *ऋक् संहिता* के खिल भाग का 25वाँ सूक्त ''रात्रि सूक्त'' कहा जाता है जिसमें प्रधानतया रात्रिरूप में देवी का ही स्तवन है –

''**उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितार्दिव:। रात्रि स्तोमं त जिग्युषे।।**[5]

ऋक् संहिता के ही खिल भाग (अष्टक 4 अध्याय 4 वर्ग 34) में *'श्री सूक्त'* नामक एक अन्य सूक्त 15 ऋचाओं का है जिसमें महालक्ष्मी की स्तुति है –

''**ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।**
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह।।[6]

यजुर्वेद में सूर्य पत्नी नववधू-रूप में नवीन जड़-जगत् और चर-जीवों की जननी के रूप में प्रस्तुत है।

सामवेद में भगवती परा देवता के रूप में, प्राण के अध्यक्ष चेतन की लयभूमि के रूप में अभिहित हैं एवं *अथर्ववेद* में उसके एक भाग 'सौभाग्य काण्ड' में सुभगा, सुन्दरी, अम्बिका आदि रूपों में इसी शक्ति की महिमा का गान है।

ब्राह्मण एवं आरण्यक में वह चैतन्य की शुद्ध शक्ति गायत्री, सावित्री, सरस्वती आदि रूपों में बहुधा वर्णित है। उपनिषदों में ब्रह्म की आद्याशक्ति को तीन भागों में बाँटा गया है। *ऋग्वेद* की शाखा *ऐतरेय उपनिषद्* में कहा गया है कि उस परमात्मा ने सङ्कल्प किया ''दृष्टि स ईक्षत''।[7] यह आन्तरिक 'इच्छाशक्ति' का केन्द्रीय भाव कहलाता है, जिसे परवर्त्ती तन्त्रशास्त्रों में पराबिन्दु कहा गया है उसके पश्चात् ब्रह्म ने (परमात्मा ने) काम को वेग दिया और अत्यन्त गहन निरीक्षण किया – ''सोऽकामयत।[8] तपोऽकुरुत।'' इस आदि इच्छा के पश्चात् ज्ञानरूप वेग से ब्रह्म तप द्वारा एकीकरण को प्राप्त होकर घनीभूत हआ— ''तपसा चीयते''[9] और उसमें से प्राणतत्त्व अभिव्यक्त हुआ। ब्रह्मतत्त्व की पर बिन्दु अवस्था में जो आद्य क्षोभ होकर प्राणतत्त्व का उदय हुआ उसे तन्त्रशास्त्र में 'अपरबिन्दु' कहते हैं। यही ब्रह्मा की 'ज्ञानशक्ति' है तदन्तर पन्द्रह कलाओं द्वारा भुवनों को रचकर भोग्य, भोग साधन, भोग भूमि आदि ब्रह्म की तृतीय शक्ति 'क्रियाशक्ति' कहलाती है। औपनिषद् ईक्षण, तप और सर्जन ही वेदान्त की भाषा में ज्ञान इच्छा और क्रिया शक्ति कहलायी तथा ये ही तन्त्रशास्त्र में बिन्दु 'बीज' और नाद कहलाए। तन्त्र में क्रियाशक्ति को 'नाद' कहा गया है और जिस द्रव्य में उस 'नाद' की लहरी जाग्रत होती है उसे 'बीज' कहते हैं। इन तीनों शक्तियों को तन्त्र में परब्रह्म या शिव की स्वाभाविक शक्ति माना गया है। विराट् महाशक्ति जिसका इच्छाशक्ति या ईश्वरीय शक्ति के रूप में वर्णन किया गया है, आगमशास्त्रों में जगदम्बा अथवा जगत्प्रसृति के नाम से वर्णित हुई हैं[10] तथा शक्ति के स्फुरण वाले ब्रह्म चैतन्य को 'शिव' कहा जाता है। ब्रह्म के परबिन्दु, अपरबिन्दु और इसके तीन विभागों को समझने के लिए एक त्रिभुज की रचना की गई और 'त्रिपुरधाम' कहा गया। यहाँ मध्य बिन्दु पर बिन्दु का सूचक है और तीनों कोणों के सिरे अपरबिन्दु के बिन्दु (चिदंश), बीज (अचिदंश) और नाद (चिदचिदंश) के सूचक हैं। इस सम्पूर्ण आकृति की अधिष्ठात्री देवता को 'त्रिपुरा' कहते हैं। इस मूल प्रतीक का सर्वांश विवर या प्रस्तार 'श्री चक्र' है। और उसे समझाने वाली विद्या 'श्री विद्या' कहलाती है।

उपनिषदों में शक्तितत्त्व की प्रतिपादक चौदह उपनिषदें द्रष्टव्य हैं —

1) त्रिपुरा, 2) त्रिपुरातापिनी, 3) देवी, 4) बहवृच, 5) भावना, 6) सरस्वती-हृदय, 7) सीता, 8) सौभाग्य, 9) काली, 10) तारा, 11) अद्वैत भावना, 12) अरुणा, 13) कौल और 14) श्री विद्या तारक।

उक्त उपनिषदों में काली, कौल, और श्री विद्यातारक नामक तीन उपनिषदें वेद के शाखा साहित्य में नहीं मिलती हैं अत: ये तन्त्र शास्त्र की परवर्ती ही कही जा सकती है। अन्य मन्त्र या ब्राह्मण समूह में उपलब्ध होती हैं। *त्रिपुरामहोपनिषद्* में 16 मन्त्र हैं जो ऋचा रूप हैं। *शाकलसंहिता* और *कौषीतकि ब्राह्मण* के साथ सम्बद्ध होने वाले आरण्यक में बह्वृच ब्राह्मणों के पाठ में ये मन्त्र आते हैं। साथ ही *शङ्खायन कल्पसूत्र* के साथ इन

मन्त्रों का विनियोग माना जाता है। अत: निश्चय ही ये श्रौतसूत्र के मन्त्र हैं। इस उपनिषद् पर अप्पय्य दीक्षित, भास्कर्राय और रामानन्द के भाष्य हैं।

❊ '*त्रिपुरातापिनी*' में मूल श्री विद्या की पञ्चदशाक्षरी का उद्धार है, देवी की स्थूल पूजन-पद्धति और सूक्ष्म पूजन पद्धति दी गयी है। तीन देवी मन्त्रों का उद्धार है। गायत्री मन्त्र का शक्तिवाद में तात्पर्यार्थ है एवं अन्त निर्गुण ब्रह्मविद्या का भी प्रतिपादन है। इसका भाष्य अप्पय्य दीक्षित और भास्कर्राय कृत है यह त्रिपदा गायत्री में निबद्ध है।[11]

❊ '*देव्युपनिषद्*' में 'वाकसूक्त' और 'श्री सूक्त' के मन्त्र हैं साथ ही श्री विद्या की पञ्चदशी भी है। यह उपनिषद् अथर्ववेद के 'सौभाग्यकाण्ड' की मानी जाती है। यही 'देव्यथर्वशीर्षोपनिषद्' कहलाती है।

❊ '*बह्वृच्*' — उपनिषद् के शाक्तसम्प्रदाय के मार्ग द्वय कादि एवं हादि विद्या का उद्धार है और ललिता रूप से परब्रह्म परमात्मा का चिन्तन है। शक्ति के मूल पञ्चदशाक्षरी मन्त्र में जिस मन्त्र में 'क' वर्ण है उसे 'कादि' मत और जिसमें 'ह' वर्ण है उसे 'हादि' मत कहते हैं।

❊ '*भावनोपनिषद्*' देवी के पर स्वरूप के भाव का प्रतिपादन कराते हुए अथर्ववेद का एक भाग होकर ''श्री गुरु: सर्वकारणभूता शक्ति: से प्रारम्भ होकर भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति, स एव शिवयोगीति निगद्यते'' के साथ 35 सूत्रों में और अन्तिम दो उपसंहार सूत्रों से संवलित हो 37 सूत्रों में परिसमाप्ति होती है। इस उपनिषद् में भगवती श्री ललिता महात्रिपुरसुन्दरी की उपासना के तीन प्रकार 1- स्थूल, 2- सूक्ष्म और 3- पर क्रमश: कायिक, वाचिक और मानसिक होते हैं। यही बहिर्याग, अन्तर्याग और महायाग नामों से व्यवहृत है। इनमें श्री यन्त्र का पूजनोपचारों से विधिवत् अर्चन करना स्थूल रूप है, सूक्ष्मरूप श्रीविद्यामहामन्त्र का अर्थानुसन्धानपूर्वक षट्चक्रों का ध्यान करते हुए जप करना और उपासना का अन्तिम अथवा 'पर' रूप है अन्त:करण (मन, चित्त, अहंकार और बुद्धि) एवं शरीर के समस्त अवयवों को श्री चक्ररूप में भावित करना। इस प्रकार इस उपनिषद् में श्री विद्या की अध्यात्म प्रतिष्ठा है। इस पर अप्पय्य दीक्षित और भास्कर्राय के भाष्य हैं। ''शाक्त-अद्वैतवाद'' की भित्ति इसी उपनिषद् पर आधारित है।

❊ *सरस्वती-हृदय* में *ऋग्वेदसंहिता* के सरस्वती सम्बन्धी सारभूत मन्त्र हैं और उनका तान्त्रिक विनियोग बताया गया है।

❊ *सौभाग्य लक्ष्मी* श्री सूक्त है, जो ऋग्वेद के चतुर्थ अष्टक के साथ चतुर्थ अध्याय के 34वें वर्ग में आता है इसी के खिल या परिशिष्ट सूक्तों में है। तान्त्रिक विनियोग बताते हुए नवचक्र में देवी की उपासना का स्वरूप वर्णित है। अतिसंक्षिप्त 15-16 पंक्तियों के *श्री चक्रोपनिषद्* के आरम्भ में चक्रन्याय का निर्देश है और अन्त में कहा गया है शक्ति के बिना मोक्षादि की प्राप्ति नहीं होती है —

> ''**विना शक्तिं न मोक्षो न ज्ञानं न सत्यं न धर्मो न तपो**
> **न हरिर्न हरो न विरिञ्चि:। सर्वं शक्तियुक्तं भवेत्।।**''[13]

काली, तारा, अद्वैत भावना. कौल, श्रीविद्या तारक आदि उपनिषदें परवर्ती हैं यह वाममार्ग के प्रचार के पश्चात् ही आभासित होती है। इनमें तारा बौद्धों में विशेष प्रचलित है। *अरुणोपनिषद् तैत्तिरीय आरण्यक* का अङ्ग है। यह (118) एक सौ अट्ठारह 'उपनिषद् समुच्चय' के अरुणोपनिषद् से भिन्न है। इसमें भगवती ललिता त्रिपुरसुन्दरी की साधना के अनेक गूढ़ रहस्यों पर प्रकाश डालते हुए उनसे विविध अभीष्टों के पूर्त्यर्थ स्तवन करते हुए ऋषिगण कहते हैं —

अदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिः। अस्माकं भूत्वविता तनूनाम्।। आप्ल्रास्व प्रप्लवस्व। आण्डीभाव ज मा मुहुः। सुखादीन्दुःखनिधानम्। प्रतिमुञ्चस्व स्वां पुरम्।[14]

माँ श्री विद्या! आप सहस्रधार (सहस्रदल कमल) से निरन्तर स्पन्दित हो रही अमृत की धाराओं से मस्तक से लेकर चरणपर्यन्त हमें आप्लावित कर दें। हमारे शरीर में स्थित बहत्तर हजार नाड़ियों को भी उस अमृत अभिषिञ्चित करें, हमारे शरीर को बाह्य दृश्यमान सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के साथ संयुक्त करें तथा बारम्बार हम पर अनुग्रह करें। उक्त चौदह उपनिषदों के अतिरिक्त भगवती पराशक्ति की उपासनापरक 20 अन्य उपनिषदों के भी साक्ष्य उपलब्ध हैं।

1. गुह्यकाली, 2. कालिका, 3. कालिमेधादीक्षिता, 4. सावित्री, 5. गायत्री, 6. गायत्रीरहस्य, 7. राधा, 8. राधिकातापनीय, 9. राधोपनिषद्, 10. तुलसी, 11. अन्नपूर्णा, 12 .श्री चक्र, 13. सुमुखी, 14. षोढा, 15. हंसषोढा, 16. गृह्यषोढा, 17. राजश्यमलारहस्य, 18. वनदुर्गा, 19. सरस्वती रहस्य।

इनमें संख्या 12 से 17 तक की उपनिषदें अथर्ववेद के ''सौभाग्यकाण्ड'' के रूप में कथित हैं।

वेदाङ्ग साहित्य में व्याकरण मुख माना गया है ''मुखं व्याकरणं स्मृतम्''[12] व्याकरण आगम में वाक् को चैतन्य की शक्ति माना गया। *ऋग्वेद* में वर्णन है – इस वाग् देवी के चार पाद हैं, जिसे बुद्धिमान जानते हैं, इनमें तीन पाद गुहा में गुप्त है केवल चौथे पाद को ही मनुष्य जानते हैं। मन्त्रानुसार ये चार पाद परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी हैं जिनमें आरम्भ के तीनों पाद क्रमशः बुद्धिमान और प्राण की गुफा में गुप्त हैं केवल बैखरी वाणी मनुष्यों में प्रचलित है। *वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा* में कहा गया है कि परमेश्वर की सर्जनेच्छा से माया वृत्ति प्रकट हुई और उसमें से बीज गुणों वाला अव्यक्त ही शक्तितत्त्व है, इस बिन्दु का जडांश बीज चैतन्यांश (अपर) बिन्दु और मिश्रांश नाद है।

सूत्र साहित्य में कल्पसूत्रों में श्रौत सूत्र, गृह्यसूत्र एवं धर्मशास्त्र परिगणित है। शक्तिसम्बद्ध *अथर्ववेद* के सौभाग्यकाण्ड पर व्यापक सूत्र साहित्य है जिनमें से *परशुराम-कल्पसूत्र* प्रमुख है। आकार में छोटा होने पर भी शाक्तों के आचार-विचार की चर्चा हुई है। इसमें दीक्षा खण्ड, गणेश पद्धति, ललिताक्रम, पन्द्रह नित्या और प्रधान देवता का लयाङ्ग-पूजन, श्री चक्र पूजनपद्धति, काम्य प्रयोग, निष्काम प्रयोग, सम्पूर्ण मन्त्रों की सामान्य पद्धति, समयाचार सङ्ग्रह और कौलाचार सङ्ग्रह आदि दस विषय हैं। इसके अतिरिक्त अगस्त्यमुनि के *शक्ति सूत्र*, हयग्रीव के *शक्तिसूत्र*, *प्रत्यभिज्ञा शक्तिसूत्र*, अङ्गिरा ऋषि के *देवीमीमांसा दर्शन सूत्र* और

गौडपादाचार्य के *श्री विद्यारत्नसूत्र* ग्रन्थों में भी शक्तितत्त्व की विस्तृत विवेचना है। आगमतन्त्रों के अनुसार 'प्रकाश को शिव' एवं विमर्श को 'शक्ति' कहा गया। समस्त वस्तुएँ प्रकृति में सूक्ष्म रूप में स्थित हैं। परम शिव व शक्ति दोनों ही श्लिष्ट होकर रहते हैं। नि:स्पन्द परम शिवतत्त्व और निषेधात्मक तत्त्व ही शक्ति तत्त्व है— ''आसीज्ज्ञानमथो ह्यर्थ एकमेवाविकल्पत:।।''[15] ज्ञान और कर्म दोनों ही अविकल्पित होकर एक में रहते हैं तब साम्यावस्था मानी जाती है।

निगमागम-पारदृश्वा भगवत्पाद आद्य शङ्कराचार्य की दृष्टि में शक्ति ही विश्वसारा परमप्रधान, प्रपञ्च की सारसर्वस्वभूता है और इसी प्रपञ्च का सार प्रपञ्चसार है — ''प्रधानमिति यामाहुर्या शक्तिरिति कथ्यते।।''[16]

भगवती ब्रह्मा, विष्णु, महादेव से लेकर समस्त देव-मुनि मानव-दानवों को वशीभूत कर आगे बढ़कर भी पराशक्ति के रूप में अतिवर्तन करती है। द्वितीय पटल में प्रणव ह्रीङ्कार एवं कुण्डलिनी को ही वे पराशक्ति कहते हैं। गायत्री को समस्त शक्तियों का मूल बताते हुए 'शक्ति' शब्द का विशेष रूप से बार-बार प्रयुक्त कर विष्णु की शक्तियों का भी विवरण है।

वेदों का उपबृंहण करने वाले पुराणों में वेदों और उपनिषदों में सन्निहित आद्यशक्ति के तत्त्वों का आश्रय लेकर शाक्तपुराणों में स्वरूप महात्म्य एवं उपासनाप्रणाली का विस्तृत विवरण उपन्यस्त है। ब्रह्मवैवर्तपुराण के प्रकृतिखण्ड में *शिवपुराण* के उमा संहिता प्रकरण में तथा ब्रह्माण्डपुराण ललितोपाख्यान प्रकरण में भी शक्ति के माहात्म्य और साधना-पद्धति का वर्णन है। *देवी भागवत पुराण, मार्कण्डेय पुराण, कालिका पुराण, देवी पुराण महाभागवत* आदि पुराणों तथा उपपुराणों में अभिहित भेद की प्रतीति बुद्धि भ्रम के कारण होती है, देवी तथा ब्रह्म में वास्तविक भेद नहीं है।

सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैवममास्य च।
योऽसौ साहमहं यासौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात्।।[17] **(*देवी भागवत* 3/6/2)**

तन्त्रागम शास्त्रज्ञ महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज का कथन है कि जिस प्रकार बौद्ध धर्म तथा संघ-त्रिरत्न स्वीकार करते हैं उसी प्रकार भेदवादी तान्त्रिक आचार्यगण भी शिव, शक्ति एवं बिन्दु से तीन रत्न मानते हैं। ये ही समस्त तत्त्वों के अधिष्ठाता एवं उपादान से प्रकाशमान हैं। शुद्धतत्त्वमय कार्यात्मक शुद्ध जगत् का उपादान बिन्दु है तथा कर्त्ता शिव है और करण 'शक्ति' है। कामिक, रौरव, स्वायम्भुव मृगेन्द्र आदि आगमों में अघोरशिव, सद्योजात, रामकण्ठ, नारायणकण्ठ आदि आचार्यों के ग्रन्थों में इसका विशेष विवरण मिलता है।[18]

पूज्यपाद ब्रह्मलीन अनन्त श्री स्वामी श्री करपात्री जी महाराज के मतानुसार अनन्तकोटि ब्रह्माण्डत्मक प्रपञ्च की अधिष्ठानभूता सच्चिदानन्द रूप भगवती ही सम्पूर्ण विश्व को सत्ता, स्फूर्ति तथा सरसता प्रदान करती है। विश्वप्रपञ्च उन्हीं से उत्पन्न होता है, अन्त में उन्हीं में लीन हो जाता है। यथा दर्पण को स्पर्श कर देखा जाए तो यहाँ वास्तव में कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। वैसे ही सच्चिदानन्द रूप महाचिति भगवती में सम्पूर्ण विश्वभासित होता है।

इस प्रकार निगमागम शास्त्र सम्मत सत्-चित्-आनन्दरूपा शक्ति अपनी सर्वव्यापकता से सदा-सर्वत्र एक रस विराजमान है। चित्ति-शक्ति, चिच्छक्ति, चेतन-शक्ति, दैवी शक्ति, पराशक्ति, ब्रह्म, आत्मा आदि सभी पर्याय है, समस्त विश्व का उद्भव, धारण एवं लय शक्ति के द्वारा तथा शक्ति में ही होता है।

''चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धि हेतुः''[19] समस्त विश्व महाशक्ति का ही विलास है। देवी भागवत में भगवती का उद्बोधन है — **''सर्वे खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्।।''**[20] समस्त विश्व मैं ही हूँ मुझसे भिन्न सनातन अथवा अविनाशी तत्त्व अन्य कोई नहीं है।

सन्दर्भ

1. *श्वेताश्वतर उपनिषद्* (6/8)
2. *अमरकोश* –
3. *ऋग्वेद संहिता* – 10/125
4. *ऋग्वेद संहिता* – 10/123/7
5. *ऋग्वेद संहिता* – 10/127/7
6. *ऋग्वेद* – खिल भाग (श्री सूक्त)
7. *ऐतरेयोपनिषद्* – 1/1
8. *तैत्तिरीयोपनिषद्* – ब्रह्मानन्द वल्ली - षष्ठ अनुवाक
9. *मुण्डकोपनिषद्* – खण्ड - 1/8
10. *भारतीय संस्कृति एवं साधना*– महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज- पृष्ठ सं0 590
11. www.wikipedia.org
12. *भावनोपनिषद्*
13. *श्री चक्रोपनिषद्* सौभाग्यकाण्ड
14. *अरुणोपनिषद्*
15. www.wikipedia.org
16. *प्रपञ्चसार तन्त्र* – प्रथम पटल-26
17. *देवी भागवत* – 3/6/2
18. *भारतीय संस्कृति एवं साधना*– महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज- पृष्ठ सं0 590
19. *प्रत्यभिज्ञा सूत्र*
20. *देवीभागवत पुराण*

सहायक आचार्य
(अतिथि प्रवक्ता)
डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज,
वाराणसी।
मो. 9532676551

नाथ-पन्थ में शक्ति तत्त्व की भूमिका

डॉ. रञ्जनलता

धारयते इति धर्मः अर्थात् जिसका धारण किया जाय उसे धर्म कहते हैं। भारत एक धर्म प्रधान देश रहा है परन्तु यहाँ धर्म संकुचित अर्थ मात्र में नही वरन् जीवन की अनिवार्य पूजा पद्धति के रूप में स्वीकार किया गया है। शैवधर्म संसार के प्राचीन धर्मों में से एक है। भारत में इसके चार प्रधान सम्प्रदाय प्रचलित है- राजस्थान में पाशुपत शैव, तामिलनाडु में सिद्धान्त शैव, कर्नाटक में वीर शैव तथा कश्मीर में अद्वैत शैव। भारत धार्मिक स्थिति से इतना उन्नत है कि यहाँ धार्मिक सिद्धान्त केवल सिद्धान्त ही नहीं वरन् मानुषिक जीवन का अंग है। यह सिद्धान्त परम्परा से ही प्रचलित है और इसका अनुसरण करके भक्तजन परमपद को प्राप्त हुए हैं, परन्तु काल व्यतीत होने के साथ ही इसका क्रियात्मक रूप मौखिक सिद्धान्त मात्र में रह गया और इसका दार्शनिक भाग प्रायः लुप्त हो गया।

अद्वैत शैव साहित्य तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है-

1. आगम शास्त्र, 2. स्पन्द शास्त्र एवं 3. प्रत्यभिज्ञा शास्त्र।[1]

1. आगमशास्त्र

आगम शास्त्र उन ग्रन्थों को कहा गया है जो मौखिक रूप से गुरु द्वारा शिष्यों को प्रदान किए गए हैं। कश्मीर का शैव दर्शन इसी कोटि के अन्तर्गत आता है जिसके प्रमुख आगम शास्त्र *शिव सूत्र, विज्ञान-भैरव, मालिनी विजय, रुद्रयामल* तथा *शिव सूत्रों* पर उपलब्ध वृत्ति व व्याख्या ग्रन्थ आदि हैं।[2]

2. स्पन्दशास्त्र

इसमें अद्वैत दर्शन के मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन है। इसमें मुख्यतः *स्पन्दसूत्र* अथवा *स्पन्दकारिका* तथा इन पर उपलब्ध भिन्न-भिन्न टीकाएँ हैं। श्री रामकण्ठ लिखित *विवृत्ति*, श्री उत्पलदेव वैष्णव लिखित *प्रदीपिका*, श्री क्षेमराज लिखित *स्पन्दसन्दोह* और *स्पन्दनिर्णय* आदि प्रमुख ग्रन्थ इसी कोटि के हैं।[3]

3. प्रत्यभिज्ञा शास्त्र

इसमें युक्ति व तर्क-वितर्क द्वारा मुख्य शास्त्रीय सिद्धान्त दर्शाये गए हैं। इनमें मुख्य ग्रन्थ अभिनवगुप्त व क्षेमराज के मिलते हैं। इस कोटि में *प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, नेत्रोद्योत, स्वच्छन्दोद्योत, शिवसूत्र-विमर्शिनी, विज्ञान-भैरवोद्योत, स्तवचिन्तामणि टीका, पराप्रवेशिका, षट्त्रिंशत्तत्त्वसन्दोह* आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं।[4]

वैदिक संस्कृति आदि संस्कृति के रूप में विख्यात है। कालानन्तर में वैदिक संस्कृति में आई हुई विकृतियों से विभिन्न मत-मतान्तरों का उदय अथवा अस्त होना इस वैदिक संस्कृति के शुद्धिकरण के हेतु से

ही था। नाथ-पन्थ इसी धार्मिक विशिष्टता की दृढ़ आधारशिला पर प्रतिष्ठित एक ऐसा सम्प्रदाय है, जिसका मूल शैव सम्प्रदाय अथवा आदिशिव से प्रकट किया जाता है।

नाथ-पन्थ को आगम-परम्परा से जोड़ा जाता है। आगम-परम्परा के अन्तर्गत एक परम्परा शैव भक्तों की चली जिसे नाथ-पन्थ के नाम से अभिहित किया जाता है। नाथ पन्थ में मूल प्रवर्तक के रूप में आदिनाथ शिव ही है। यह परम सत्य है कि आदिनाथ स्वयं शिव ही है –

देदीप्यमानस्तत्त्वस्य कर्ता साक्षात् स्वयं शिवः।
संरक्षन्तो विश्वमेव धीराः सिद्धमताश्रयाः।।[5]

'अग्निषोमात्मकं जगतत्'[6] उक्ति अनुसार यह जगत् अग्नि अर्थात् शिव तत्त्व तथा सोम अर्थात् शक्ति तत्त्व के सम्मिलन से ही निर्मित है। प्रत्यभिज्ञाशास्त्र के अनुसार जीव परम शिव ही है वह केवल प्रकाशमय ही नहीं है विमर्शमय भी है। शैव दर्शन में कहा है कि शिव प्रकाश रूप है तथा स्पन्द रहित है। शक्ति के संयोग से ही उसमें स्पन्द की उत्पत्ति होती है। जब प्रकाशात्मक शिव के साथ शक्ति का तादात्म्य होता है वही संवित् कहलाती है। शक्तिहीन प्रकाश को स्वतन्त्रता के अभाव से महेश्वर नहीं कहा जा सकता। शिव और परमशिव में यही भेद है कि शिव शक्तिहीन होने के कारण जड़वत् है तथा विश्वोत्तीर्ण है किन्तु शक्ति के संयोग से वही शिव परम शिव नाम से कहा जाता है इस स्थिति में यह विश्वोत्तीर्ण होने पर विश्वात्मक भी है। इसी को अनुत्तर भी कहा है।

परम शिव की शक्तियाँ अनन्त हैं किन्तु निम्न पाँच शक्तियाँ प्रमुख हैं— 1-चित् 2-आनन्द 3-इच्छा 4-ज्ञान 5-क्रिया।[7] चित् और आनन्द शक्तियाँ ही वस्तुतः शिव का स्वरूप हैं तथा अन्य तीन शक्तियाँ शक्ति के अन्तर्गत हैं।

नाथ पन्थ में शक्ति की अवधारणा शिव की सर्वोच्चता के साथ अनन्य रूप से गुंथी हुई है। यह पन्थ मूलतः शैव परम्परा का अंग है तथा गोरखनाथ व मत्स्येन्द्रनाथ इसके प्रमुख प्रवर्तक माने जाते हैं, इसलिए नाथों के यहाँ शिव को परब्रह्म या परम तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है, किन्तु शिव की यह सत्ता शक्ति के बिना अधूरी मानी गई है। तन्त्र की प्रसिद्ध उक्ति 'शक्ति बिना शिव शववत् है'[8] (शिवोऽपि शवतां याति कुण्डलिन्यां विवर्जितः।)[9] नाथ पन्थ में भी मान्य है अर्थात् शिव चेतन तत्त्व (चित्) हैं तो शक्ति वह गतिशील ऊर्जा है जिसके बिना चेतना निष्क्रिय रहती है। दोनों को परस्पर अभिन्न, एक ही तत्त्व के दो रूप माना गया है, जैसा कि अर्धनारीश्वर की कल्पना में प्रतीकात्मक रूप से व्यक्त होता है।[10] यहाँ शक्ति निम्न रूपों में अभिव्यक्त होती है –

1. कुण्डलिनी शक्ति के रूप में शक्ति तत्त्व

नाथ साधना पद्धति में शक्ति की सबसे महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति कुण्डलिनी शक्ति के रूप में होती है। हठयोग के अनुसार यह सुप्त शक्ति मूलाधार चक्र में सर्पाकार रूप में स्थित रहती है। योग-साधना, प्राणायाम तथा विभिन्न मुद्राओं (जैसे शक्तिचालिनी मुद्रा) के माध्यम से इस शक्ति को जाग्रत कर सुषुम्ना नाड़ी से ऊपर सहस्रार चक्र तक प्रवाहित किया जाता है, जहाँ इसका मिलन शिव (परम चेतना) से होता है। इसी मिलन को

नाथ योगी मोक्ष या सिद्धि की प्राप्ति मानते हैं। *स्वात्माराम* कृत *'हठयोग प्रदीपिका'* नाथ संप्रदाय का अत्यन्त प्रसिद्ध साधना-ग्रन्थ है जिसके तृतीय उपदेश में कुण्डलिनी शक्ति का विस्तृत वर्णन है, जो सुप्त अवस्था में सर्पिणी की भाँति मूलाधार चक्र में स्थित रहती है और योग-तकनीक से जाग्रत होकर सुषुम्ना नाड़ी से सहस्रार चक्र तक उठती हुई शिव से संगम करती है।

2. इड़ा-पिंगला के रूप में शिव व शक्ति तत्त्व

इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ क्रमशः शक्ति-शिव, चन्द्र-सूर्य तथा स्त्री-पुरुष तत्त्वों की प्रतीक हैं। इनका सुषुम्ना में सामंजस्य ही साधना की पूर्णता है। इसके साथ ही इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ भी क्रमशः शक्ति और शिव, चंद्र और सूर्य, स्त्री और पुरुष तत्त्वों की प्रतीक मानी गई हैं, जिनका सामंजस्य सुषुम्ना में होता है। इस प्रकार नाथ पन्थ में शक्ति, शिव की सहचरी न होकर उसकी अनिवार्य पूरक सत्ता है, जिसके बिना शिव-तत्त्व की सिद्धि असंभव मानी गई है।

3. काय-साधना के रूप में शक्ति तत्त्व

नाथ पन्थ की विशेषता यह है कि वह शक्ति को बाह्य देवी-पूजा का विषय नहीं, बल्कि शरीर के भीतर स्थित, साधना द्वारा जाग्रत होने योग्य ऊर्जा मानता है। इसीलिए इसे आन्तरिक शक्ति को जागृत करने वाली परम्परा भी कहा जाता है, जहाँ शक्ति, शिव की अनिवार्य पूरक सत्ता है। उसके बिना शिव-तत्त्व की सिद्धि असंभव है।

4. ललिता तत्त्व के रूप में शक्ति तत्त्व

शिव-शक्ति का मूल स्वरूप शिव व ललिता तत्त्व के रूप में भी यहाँ नाथ पन्थ में स्वीकृत किया गया है। इसी कारणशिव के साथ शक्ति की उपासना नाथ-पन्थ में ललिता-तत्त्व के रूप में की गई है। ललिता तत्त्व की महिमा *पद्मपुराण* के पातालखण्ड में निम्न प्रकार से बताई गई है –

अहं च ललितादेवी राधिका या गीयते।
अहं च वासुदेवाख्यो नित्यं कामकलात्मकः।
सत्यं योषित्स्वरूपोऽहं योषिश्चाहं सनातनी।
अह च ललितादेवी पुंरूपा कृष्णविग्रहा ॥[11]

अर्थात् वह शिव तत्त्व ही कहता है कि मैं ही ललिता-तत्त्व हूँ और जो राधिका-तत्त्व के नाम से प्रसिद्ध हैं, वह भी मैं ही हूँ। सभी पुरुष-स्त्रियाँ मेरी ही रूपवाली हैं और मैं ही सनातन नारी (आदिशक्ति जगदम्बा) हूँ तथा पुरुष रूप में श्रीकृष्ण का विग्रह धारण करने वाली ललितादेवी मैं ही हूँ, मैं श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट अथवा अभिव्यक्त होती हूँ।

इसी रूप की अभिव्यक्ति *शक्तिसंगम तन्त्र* में भी प्राप्त होती है –

कदाचिदाद्या ललिता पुंरूपा कृष्णविग्रहा।
लोकसम्मोहनार्थाय स्वरूपं विभ्रती परा।
कदाचिदाद्या श्रीतारा पुंरूपा रामविग्रहा।
रा शक्तिरिति विख्याता मशिवः परिकीर्तितः।[12]

शिव व शक्तिमय यही तत्त्व ब्रह्म व राम के रूप में भी गाया जाता है। यही जटा-जूट धारी के रूप में भी योगासन में मग्न रहता है। यही देव त्रिनेत्रधारी भी है तथा इसी का तेज गौरी के अन्तः में तथा सीता के अन्तः में भी प्रकट होता है।

5. सृजनशक्ति के रूप में शक्ति तत्त्व

शक्तियुक्त शिव ही नित्य निर्गुण (निष्क्रिय) तथा नित्य सगुण (सक्रिय) है। नित्य अद्वैत तथा नित्य द्वैत है। नाथ-सम्प्रदाय में इसी दार्शनिक पद्धति को 'द्वैताद्वैतविवर्जित' तथा 'पक्षापक्षविनिर्मुक्त' कहा गया है। इस परम शिव में सिसृच्छा उत्पन्न होने पर उसे सगुण शिव कहा गया है। यह सिसृच्छा ही शक्ति है।[13] इसके उत्पन्न होते ही शिव व शक्ति दो तत्त्व हो जाते हैं जो इस स्थिति में अभिन्न रहते हैं। यह शक्ति पाँच अवस्थाओं से होती हुई स्फुरित होती है। ये निजा, परा, अपरा, सूक्ष्म अहंता, तथा कुण्डली नामक हैं। इसी शक्ति की सहायता से शिव इस विश्वप्रपञ्च की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार करने में समर्थ होते हैं। इन विकासोन्मुखी अवस्था में शिव क्रमशः अपर, शून्य, निरंजन तथा परमात्मा के नाम से प्रसिद्ध होते हैं। वेदान्तिक ब्रह्म की शक्ति जिसे माया कहा जाता है, उससे भिन्न कुण्डलिनी है। यह कुण्डलिनी या चिच्छक्ति, चिद्रूपिणी, अनन्तरूपा और अनन्तशक्तिरूपा है। जगत् इसी शक्ति का परिणाम है तथा शक्ति अपने पाँच गुणों पूर्णता, प्रतिबिम्बिता, प्रबलता, प्रोच्वलता तथा प्रत्यङ्खता से युक्त है।

इस प्रकार प्रामाणिक ग्रन्थों के माध्यम से शिव व शक्ति के स्वरूप का चिन्तन किया गया है। गोरखनाथ कृत *"सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति"* हठयोग, कुण्डलिनी और शिव-शक्ति समागम का प्रामाणिक स्रोत ग्रन्थ है| पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल संकलित *"गोरखबानी"* में गोरखनाथ की मूल रचनाओं का संग्रह हैजिसमें गुरु-महिमा, इंद्रिय-निग्रह, प्राण-साधना, वैराग्य और कुण्डलिनी-जागरण का वर्णन है। इनके अतिरिक्त *शक्तिसंगमतन्त्र* आदि अन्य ग्रन्थों में भी शक्ति के स्वरूप का विस्तृत चिन्तन मिलता है।

नाथ पन्थ की मान्यता है कि "यही मन शिव है, यही मन शक्ति है । यही मन पञ्च तत्त्वों से निर्मित जीव है । मन को लेकर उन्मना अवस्था में लीन करने से साधक सर्वज्ञ हो जाता है तथा तीनों लोकों की बातें कर सकता है । यह अद्वैतवादी दर्शन होते हुए भी शांकर अद्वैतवाद से पृथक् है क्योंकि नाथ तत्त्व तो द्वैत तथा अद्वैत दोनों से परे है । नाथ दर्शन में जगत् चिच्छक्ति का विकास है।"[14] नाथयोगी का लक्ष्य है शिव व शक्ति का सामरस्यरूप सहज समाधि की प्राप्ति है । इस प्रकार शक्ति की उपासना अन्ततः शिव की ही उपासना है –

शिवस्याभ्यन्तरे शक्तिः शक्तेरभ्यन्तरे शिवः।
अन्तरं नैव जानीयात् चन्द्रचन्द्रिकयोरिव।।[15]

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, *"नाथ संप्रदाय"*, हिन्दुस्तान अकादमी उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद,1950
2. ब्रिग्स जार्ज, *गोरखनाथ एण्ड कनफ़टा योगीज*, मोतीलाल बनारसीदास, 2022
3. द्विवेदी, हज़ारी प्रसाद, *नाथ सिद्धों की रचनाएं*, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014
4. *प्रत्यभिज्ञाहृदयम्*, राजानक क्षेमराज,ईश्वर आश्रम ट्रस्ट, नईदिल्ली, 2017 (द्वितीय संस्करण)
5. *नाथ संप्रदाय परम्परा युवा कल्याणार्थ नाथ पन्थ*, अरुण प्रकाश त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन,2021
6. चौहान, प्रकाशनाथ, *नाथ इतिहास*, श्री सरस्वती प्रकाशन, अजमेर
7. *शक्तिसंगमतन्त्र*, छिन्नमस्ता खण्ड, प्रभाकर मालवीय व पं. चितरन्जन मालवीय, कृष्णदास प्राच्य विद्या सीरीज- 34
8. अलंकार, सुभाष, *गोरक्षपद्धति*, प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
9. *गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह*, संपादक रामलाल श्रीवास्तव, श्री गोरखनाथ मन्दिर 2019
10. *सिद्ध-सिद्धान्त पद्धति*, गोरखनाथ, संपादक रामलाल श्रीवास्तव, श्री गोरखनाथ मन्दिर 2019
11. त्रिपाठी, रामजी, *नाथ-पन्थ का दर्शन*, आदित्य प्रकाशन, दिल्ली, 2022
12. बनर्जी, अक्षय कुमार, *गोरख-दर्शन*, महन्त दिग्विजयनाथ व्यास, गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर, 2015
13. *गोरक्षसिद्धान्त-संग्रह*, संपादक - श्रीवास्तव, रामलाल, गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर, सं. 2036
14. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल संकलित *'गोरखबानी'* गोरखनाथ, गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर (1942)
15. स्वात्माराम कृत *'हठयोग प्रदीपिका'* गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर
16. *'गोरक्ष शतक'* गोरखनाथ, संपादक, रामलाल श्रीवास्तव, गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर
17. *'गोरक्षोपनिषद्'* संपादक, रामलाल श्रीवास्तव, गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर

शोध-लेख

1. राहुल सांकृत्यायन कृत शोध-लेख — नाथ साहित्य सिद्धों की परम्परा का विकसित रूप
2. रामकुमार वर्मा का अध्ययन — नाथों के चरमोत्कर्ष का काल
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास।

सन्दर्भ

1. *प्रत्यभिज्ञाहृदयम्*, भूमिका, पृ.1
2. वही
3. वही, पृ.2

4. *प्रत्यभिज्ञाहृदयम्*, भूमिका, पृ.3
5. *सिद्धसिद्धान्तपद्धति, शक्तिसंगमतन्त्र*, बडौदासीरीज (91) के ताराखण्ड में आदिनाथ और काशी के संवाद से ग्रन्थप्रारम्भ होता है। ये आदिनाथ स्वयं शिव हैं।
6. *शतपथ ब्राह्मण* तथा *बृहज्जबालोपनिषद्*
7. *प्रत्यभिज्ञाहृदयम्*, भूमिका, पृ4.
8. तन्त्रशास्त्र तथा देवी भागवत की प्रसिद्ध उक्ति
9. *नाथ पन्थ*, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.63
10. *नाथ पन्थ*, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ62.
11. *पद्मपुराण* के पातालखण्ड, 75-45, 46 गीताप्रेस, गोरखपुर
12. *शक्तिसंगमतन्त्र*, पटल अष्टम, प्राच्य विद्या सीरीज, 34
13. *नाथ पन्थ*, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.61
14. वही।
15. *गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह*, पृ.67

(सहायक आचार्य)
संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग,
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।
आवास : महारानी लक्ष्मीबाई महिला छात्रावास,
गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।
मो. 7906607153
Email-ranjan.sans@ddugu.ac.in

अभिनवगुप्तस्य शक्तितत्त्वविमर्शः

अमृता सेन गुप्ता

सारांशः

अभिनवगुप्त-महाभागः काश्मीरशैवदर्शनस्य परमाचार्यः आसीत्। तेन शक्तितत्त्वं सूक्ष्मतया विशदीकृतम्। अस्मिन् प्रबन्धे तस्य शक्तिदर्शनस्य मूलतत्त्वानि— शिवशक्त्योः अभेदः, स्पन्दवादः, आभासवादः, विमर्शतत्त्वं च— संक्षेपेण निरूपितानि। शक्तेः उन्मेष-विकास-निमीलनरूपाः अवस्थाः, बिन्दु-नादादितत्त्वानि, ज्ञातृत्व-कर्तृत्व-क्रियाशक्तीनां विवेचनं च अत्र कृतम्।

कुञ्जिकाशब्दाः-

शक्तिः, अनिर्वचनीया, उन्मेषः, सविशेषः, निर्विशेषः, पराशक्तिः, आभासः, ज्ञानशक्तिः।

प्रस्तावना

काश्मीरशैवदर्शनं भारतीयदर्शनेषु अद्वितीयं स्थानं धारयति। अस्य दर्शनस्य प्रमुखाचार्यः अभिनवगुप्तः। तस्य ग्रन्थाः यथा *तन्त्रालोकः, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, परात्रिंशिकाविवरण* च, शक्तितत्त्वस्य गूढार्थं प्रकाशयन्ति। अस्य प्रबन्धस्य उद्देश्यं तस्य शक्तिविचारस्य तात्त्विकपरिशीलनम्।अस्यां बहुषु अभिनवगुप्त-महाभागस्य विशेषेषु द्वौ गुणौ अस्माकं मनांसि विशेषतया आकर्षयतः— प्रथमः तस्य ज्ञानलालित्यम्, द्वितीयं च मातृभक्तिः। सः अतीव बाल्य एव मातृवियोगं प्राप्तवान्। अनन्तरं केवलः स्नेहबन्धः तस्य पितरि एव आसीत्। सः अपि किञ्चित्कालानन्तरं संन्यासं स्वीकृतवान्, तेन अभिनवगुप्तस्य मनः अपि सर्वबन्धनविमुखं जातम्। सः प्रतिजज्ञे यत् कदापि गृहस्थजीवनं न करिष्यामि— "दारसुतप्रभृतिबन्धकथामनाप्तः" इति।

शक्तिः आगमे तन्त्रे च

आगमशास्त्रे निमग्नः सन् सः अनेकगुरूणां शरणं गतः। तस्य प्रमाणं *तन्त्रालोक*-ग्रन्थे दृश्यते। तस्य अन्येऽपि कालजयिनः ग्रन्थाः सन्ति— *परात्रिंशिकाविवरण* तथा *ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी।* काश्मीरदेशे भारतवर्षे च विद्वांसः तम् भैरवस्यावतारम् इव मन्यन्ते।काश्मीरशैवदर्शने तस्य असामान्यं योगदानम् अस्ति। अत्र वयं विशेषतया शक्तितत्त्वस्य तेन यथा निरूपणं कृतं, तस्य संक्षिप्तरूपेण अवलोकनं करिष्यामः।

तन्त्रसाधनायां 'शक्ति' इति प्रमुखं तत्त्वम्। शक्ति किम्? इति प्रथमं प्रश्नः उदेति। अद्वैतवेदान्ते शक्तिः अनिर्वचनीया इति उच्यते, यतः सा न पूर्णतया सत्, न असत्, न च मिथ्या। तस्याः अपेक्षया एव विश्वस्य

सृष्टिः जाता। अन्येषु दर्शनेषु— द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत— इत्यादिषु— शक्तिः नित्यपदार्थः इति स्वीक्रियते। तन्त्रे तु शक्तिः नित्यतत्त्वम्।

अद्वैतमतानुसारं शक्तेः अनादित्वं स्वीकृतम्, किन्तु अनन्तत्वं न स्वीक्रियते। तन्त्रमतानुसारं तु शक्तेः उन्मेषः, विकासः, निमीलनं च सन्ति, किन्तु पूर्णबाधः नास्ति। सा अनाद्यनन्ता च। शक्तेः परमशिवेन सह सम्बन्धः अभिन्नः अस्ति। शिवे आश्रिता सा विराजते, तथा निरन्तरं सृष्टेः गतिश्च कारणं भवति।अस्मिन् विषये वैष्णव-शैवागमयोः मतं साम्यं दृश्यते, किन्तु शक्तेः प्रकाशरूपे विषये मतभेदः अस्ति। वैष्णवाः वदन्ति— शक्तेः विकासः विशेषविकासः अस्ति। अतः लीलाविभूतौ नित्यविभूतौ च तस्याः विकासः दृश्यते, यः आनन्दलहरिरूपेण प्रकाशते। सः प्रकाशः सविशेषः निर्विशेषः च उभयरूपः अस्ति। मूर्तजगतः इव अमूर्तजगति अपि तस्याः व्यापकत्वं विद्यते।

स्पन्दीभूता पराशक्तिः

एषा शक्तिः तरङ्गायिता सती अपि कम्पनरूपा न भवति। सा पराशक्तिः, शिवे प्रतिष्ठिता। निर्विशेष-सविशेषरूपेण स्पन्दने सञ्चरति। यदा सा सविशेषा भवति, तदा जगद्रूपेण प्रकटते; यदा निर्विशेषा, तदा नामरूपातीतं विश्वं प्रकाशयति। एषा एव तस्याः स्पन्दीभूता अवस्था।एषा अवस्था 'निमीलनम्' इति कथ्यते। एतदेव शिवस्य परमावस्था अपि। अत्र सर्वप्रयत्नानां लयः भवति। ज्ञान-इच्छा-क्रियारहितः अयं भावः 'शून्यम्' इति उच्यते, किन्तु बौद्धमतस्य शून्यं न भवति।शिवः 'शून्य' इति उच्यते, तथापि सः शक्तेः धृत्याः क्रियायाश्च आश्रयः अस्ति। ज्ञानस्य सञ्चारे शक्तेः प्रकाशः भवति। ज्ञानस्य द्वे अवस्थे स्तः— (1) स्थिरा निष्कल्पभूमिका, (2) सञ्चारिणी प्रकाशशीला अवस्था। एषा द्वितीया अवस्था 'विमर्शः' इति कथ्यते। एषा एव प्रकाशरूपिणी अवस्था शक्तेः मुख्यभूमिका।अस्याः मूलं 'इच्छा'। इच्छा-आनन्द-क्रिया इत्येतानि शक्तेः निर्मलविकासाः। एतेषां मूलं नित्यः अवभासः। अस्याः शक्तेः नैसर्गिकी स्फुरणशक्तिः अस्ति— "नैसर्गिकी स्फुरता विमर्शरूपास्याः वर्तते शक्तिः" इति।

अभिनवगुप्त-मतानुसारं निर्विशेषः सविशेषश्च न विरुद्धपदार्थौ। शक्तेः स्फुरणे निर्विशेषः एव सविशेषः भवति। निर्विशेषे सविशेषस्य उन्मेषः सृष्टेः सूक्ष्मावस्था। निर्विशेषवस्तु कदापि शक्तिहीनं न भवति। शक्तिः शिवस्य एव प्रकाशः, धृत्याः स्पन्दितावस्था।अस्मिन् स्पन्दने कालकारित्वम् अस्ति, अर्थात् एषः स्पन्दितभावः न नित्यः। प्रकाशोन्मुखे अवस्थायां तिष्ठति, लये तु न तिष्ठति। तदा शिवभावः एव प्रमुखः, प्रकाशे तु शक्तिभावः प्रमुखः। तथापि शक्तेः सञ्चारे सति निर्विशेषे शिवे शक्तेः विकासः किमपि रूपं न गृह्णाति। तदा शक्तेः उदारवृत्तिः शिवमेव आश्रित्य तिष्ठति। शिवस्वरूपतां त्यक्त्वा अपि सा शक्तिः शिववत् एव विराजते।

शक्तेः अपरं वृत्तिनाम 'व्यापिनी' इति। एषा न संकोचवृत्तिः, किन्तु उदारा प्रशान्ता च। निस्तरङ्गावस्थाया: व्युत्थाने सति शक्तेः प्रकाशः महाशून्ये लीलायितः भवति, न देशेन न कालेन बद्धः। एषा एव वृत्तिः शिवस्वरूपेण प्रतिभाति।शक्तेः प्रारम्भिकः सञ्चारः काले भवति, मनः तद् द्रष्टुं अभ्यस्तम्। किन्तु अतिमानसभूमिः स्वरूपभूतः प्रकाशः, यः कालातीतः। अत्र शक्तिः शिवेन सह अभिन्ना प्रकाशते, किन्तु

कश्चन भेदः न अस्ति— एषा निष्क्रिया अवस्था।सृष्टेः परिणामात् पूर्वं अपरिणामिनी शक्तेः विकासः भवति। सः शक्तेः स्वरूपाभिव्यक्तिः, यत्र केवलम् अभिव्यक्तिः अस्ति, न तु परिणामः। प्रकाशे क्रिया सञ्चारश्च भवतः, यौ ज्ञानमयौ आनन्दमयौ च। शक्तेः विकासे तस्याः व्यापकत्वस्य स्थाने घनत्वस्य उद्भवः भवति।

चितिशक्तेः प्रकाश

चेतनायाः प्रसारः अत्र न भवति। अभिनवगुप्त तां अवस्थां "जडत्वं स्तब्धप्रकाशः" इति निर्दिशति। तस्य मतानुसारं प्रकृतिः तस्याः ऊर्ध्वतरा च अवस्था एकस्याः एव शक्तेः विकासः। सा शक्तिः क्वचित् उदारा विस्तृता च, अन्यत्र संकुचिता सीमिता च भवति। एका एव शक्तिः सृष्टौ विकसितरूपेण दृश्यते, घनीभूतविकासेन तु प्रकृतेः सृष्टिः भवति।

अभिनवगुप्तः प्रकृतेः परिणामात् भिन्नं शक्तेः अपरं विकासं स्वीकुरुते, यत् "आभासः" इति कथ्यते। चितिशक्तेः प्रकाशस्य परिणामः न भवति। सा नित्यं स्पन्दमाना अपि स्वप्रकाशं न जहाति। अतः कार्यं कारणस्य केवलं प्रकाशः, न तु परिणामः। चैतन्ये चितिशक्तिः निहिता वर्तते, सा एव क्रियाशीला भूत्वा स्पन्दते— एषः एव प्रकाशः "आभासः" इति उच्यते।

परमशिवस्य विश्वमयः प्रकाशः विमर्शमयः अस्ति।[1]विमर्शं विना प्रकाशः न सम्भवति। ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी-ग्रन्थे प्रकाशः अथवा शिवः "विमर्शसारः"[2], "विमर्शशरीरः"[3] इति उक्तः। विमर्शः तस्य प्रमुखः स्वरूपः।[4] अस्य मतानुसारं ऐश्वर्यात्मिका विमर्शरूपा कर्तृत्वशक्तिः सर्वाः शक्तयः सर्वतः प्रसारयति।[5] अभिनवगुप्तः वदति— परमेश्वरस्य विमर्शशक्तिः "अहं"-रूपेण अखण्डतया प्रकाशते। महेश्वरस्य एषा विमर्शशक्तिः शुद्धा, निरुपाधिका ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिश्च।[6] तस्य प्रकाशमानता ज्ञानशक्तिः, स्वेच्छया जगतः सृष्टिः क्रियाशक्तिः।शिवस्य एषा विमर्शशक्तिः स्वातन्त्र्यशक्तिः इति उच्यते। सा एका अभिन्ना पराशक्तिः।[7] अनया शिवः विश्वं धारयति, पश्यति, अवभासयति च।[8] भगवती एषा स्वातन्त्र्या, चिच्छक्तिः एव जगद्रूपेण स्फुरति,[9]शिवात् अभिन्ना च।[10] अतः विश्वं शक्तिरूपम् अपि अन्ततः शिवात्मकम्।[11]

त्रिविधाःशक्तयः

अभिनवगुप्तस्य मतानुसारं महेश्वरः स्वस्य शक्तिभिः एव आत्मानं प्रकाशयति। ताः शक्तयः त्रिविधाः— (क) कर्तृत्वशक्तिः, (ख) ज्ञातृत्वशक्तिः, (ग) क्रियाशक्तिः। तथापि एतत् सर्वं शिवात् भिन्नं नास्ति। विश्वं शिवस्य शक्तिप्रचयः।जयरथ आह— जडात्मकं अजडात्मकं च विश्ववैचित्र्यम्। सृष्टिः, स्थितिः, संहारः, तिरोधानम्, अनुग्रहः— एतानि पञ्च कृत्यानि। जाग्रत्, स्वप्नः, सुषुप्तिः, तुरीयम्— इत्येताः चत्वारः अवस्थाः। एतत् सर्वं शिवस्य शक्तिस्फुरणम्।[12] न हि शिवः शक्तिवर्जितः, न च शक्तिः शिवात् पृथक्।[13] अतः विमर्शशक्तिः स्वातन्त्र्यशक्तिश्च वस्तुतः एकैव।एते शक्तेः अभिन्नस्यैव द्वे स्वरूपे। शक्तिमतः शक्तेः च चितिशक्त्योः मध्ये, तथा कर्तृत्वस्य ज्ञातृत्वस्य च मध्ये यः भेदः कल्प्यते, सः केवलं विचारस्य बोधस्य च सुविधार्थं भवति।[14]

अभिनवगुप्त मन्यते यत् अभिव्यक्तिः द्विविधा— बाह्या च आन्तरा च। विश्वचैतन्यं समुद्रवत्, आभासाः तस्य प्रवाहाः इव। प्रत्येकः आभासः पृथक् प्रवाहः, यः विश्वचैतन्यरूपे समुद्रे प्रविशति। विश्वचैतन्यस्य स्वातन्त्र्यशक्तेः यः स्वरूपः आभासानां पृथग्भावेन आन्तराभिव्यक्तिं करोति, आन्तरभेदं च रक्षति, तस्य नाम कर्तृत्वशक्तिः।कदाचित् एते प्रवाहाः तरङ्गरूपेण उद्भवन्ति। तदा ते एवं विन्यस्ताः भवन्ति यत् प्रतिबिम्बग्रहणसमर्थेषु तेषु तरङ्गेषु प्रतिबिम्बसृष्टिकर्तारः अन्ये तरङ्गाः सक्रियाः भवन्ति— एषा ज्ञातृत्वशक्तेः क्रिया। प्रतिबिम्बग्रहणसमर्थस्य तरङ्गस्य या क्रिया, सा एव ज्ञानतत्त्वम्।अस्याः ज्ञातृत्वशक्तेः त्रयः स्वरूपाः— (1) ज्ञानशक्तिः, (2) स्मृतिशक्तिः, (3) भेदनिर्णयशक्तिः (अपोहनशक्तिः)। तत्र ज्ञानशक्तिः सा शक्तिः, या विश्वे अन्तर्निहितेषु असंख्येषु वस्तुषु केषाञ्चित् विशेषाणां ग्रहणं कृत्वा तेषाम् अभिव्यक्तिं करोति— "स्वरूपात् उन्मग्नम् आभासयति" इति।यथा समुद्रे द्वौ तरङ्गौ उत्थानपतनरूपेण स्तः— तयोः एकः प्रतिबिम्बग्रहणसमर्थः, सः "जीवाभासः" अथवा सीमितचेतनाभिव्यक्तिः इति कथ्यते। अपरः तादृशसमर्थ्यरहितः, सः "जडाभासः" अथवा अचेतनाभिव्यक्तिः।

यदा चेतनाभिव्यक्तेः उदयः अचेतनाभिव्यक्तेः संस्पर्शेन सक्रियः भवति, तदा यथा दर्पणस्य पुरतः वस्तुनि स्थापिते तत्क्षणमेव तस्य ज्ञानं जायते, तथा नानारूपाणि अपि ज्ञायन्ते। अतः ज्ञानं नाम केवलं सक्रियचेतनतरङ्गस्य क्रिया। ज्ञानशक्तिः तु सा शक्तिः, यस्याः कारणात् ज्ञानाय आवश्यकयोः उभयोः तरङ्गयोः उद्भवः भवति।[15]अत्र अस्माभिः अवधेयम्— यदा शक्तिः शिवाश्रये पूर्णतया स्तिमिता भवति, तदा अस्य विश्वस्य प्रकाशः न भवति। स्पन्दिते सति एव प्रकाशः जायते। अयं प्रकाशः शिवे अन्तर्निहितः एव, यद्यपि सः क्रियाप्रधानः।

चितिशक्तिः स्पन्दनात्मिका। आद्यस्पन्दने विषय–विषयीभावः न भवति। तेजोमयेन शुद्धप्रकाशात्मकस्पन्दने अस्याः विकासः भवति। अस्मिन् प्रकाशे परिणामः नास्ति, अतः आभासे छन्दः अस्ति; चितिशक्तेः गतिः अपि छन्दोमयी। अपरतः ज्योतिर्मयः लोकः छन्देन एव उद्दीप्यते, सः तस्य छन्दस्य आश्रयः। साम्यं वैषम्यं च चितेः शक्तेश्च तस्याः प्रत्येकस्य प्रकाशस्य च छन्दनियन्त्रितम्। चेतना तु प्रकृतेः क्रियायाः निर्णायिका। अत्र प्रकाशः अत्यन्तं स्वच्छः, यतः मूलकारणस्य स्वरूपं कदापि न आव्रियते। अतः सर्वत्र कार्ये कारणस्य दर्शनं सम्भवति। अत्र कारणकार्ययोः नित्यसम्बन्धः वर्तते, तेन प्रकृतेः स्पन्दनात् चितेः स्पन्दनं पृथग्भवति, समता छन्दश्च तत्र स्थितौ।प्रकृतेः उपरि स्थितं एतत् शुद्धप्रकाशतत्त्वम् अद्वैतवादिनः अपि स्वीकुर्वन्ति।

शक्तेः उन्मेषः

अभिनवगुप्त–सम्मते शक्तेः उन्मेषः एवं व्याख्यायते— यदा शक्तेः क्रिया आद्यरूपं गृह्णाति, तदा सा "बिन्दुः" इति कथ्यते। बिन्दुः शक्तेः केन्द्रितविकासः, केवलं सञ्चरणमात्रम्। द्वितीया अवस्था घनीभूतावस्था। ततः अनन्तरं विच्छुरिता शक्तिः क्रमशः केन्द्रं रचयति।यदा शक्तेः सञ्चारः किञ्चित् घनीभवति, तदा बिन्दोः प्रकाशः भवति। बिन्दुः स्वच्छः, विकासात्मकः, तेजोमयः, ज्योतिर्मयः च। अस्य विकासः शक्तेः सञ्चारमात्रानुसारं भवति। सञ्चारस्य आदौ श्वेतबिन्दुः प्रकटते, यस्मिन् गतितः अधिकं स्थितेः प्राधान्यम्—

अतः सः शिवः। गत्यधिक्ये सति रक्तवर्णः बिन्दुः भवति, सः एव शक्तिः।चेतनायाः विकासः बिन्दुरूपः, यतः शक्तिः चित्स्वरूपा।बिन्दुः प्रकाशमयः। तस्य अन्तराले यदा सृजनभावः सञ्चरति, तदा नादस्य कम्पनं गोचरं भवति। बिन्दुः आद्यप्रकाशः, नादः आद्यः शब्दरहितः शब्दः— अनाहतनादः।बिन्दुः शिवः, बीजं शक्तिः। नादः तयोः आद्यः स्फुरणप्रकारः। नादे शक्तिः प्रसृता, बिन्दौ तु घनीभूता। नादे क्रियाशक्तेः स्फुटता अधिका, अतः तत्र शक्तेः सञ्चारः स्पष्टतया अनुभूयते।नादः बिन्दुश्च शक्तेः ज्ञानरूपं क्रियारूपं च प्रकाशयतः। यदा चिच्छक्तिः क्रियाप्रधाना भवति, तदा नादस्य विकासः आरभ्यते। नादः रक्तबिन्दोः परवर्ती अवस्था, यतः रक्तबिन्दौ यावत् शक्तेः घनत्वं, नादे तस्मात् अपि अधिकं दृश्यते।

अभिनवगुप्त-आचार्यः मन्यते यत् शिवशक्त्योः युगपदेव अभिव्यक्तिः भवति। यत् अभिव्यक्तं भवति, तस्मिन् यदि चैतन्यं न स्यात्, कथं तद् "अभिव्यक्तम्" इति उच्येत? तथापि युक्त्या चैतन्यपूर्वं सत्तायाः अस्तित्वं स्वीकरणीयम्, यथा प्रकाशात् पूर्वं वह्नेः अस्तित्वं स्वीक्रियते।एषा अभिव्यक्तिः "अहम्" इति शब्दस्य "अस्मि" इति शब्देन सह संयोगेन चिह्निता भवति— यथा "अहमस्मि" इति भावः प्रतीयते। शक्तेः अस्यां अभिव्यक्त्यवस्थायां आनन्दशक्तेः प्राधान्यम् अभिनवगुप्त-आचार्येण स्वीकृतम्।

उपसंहारः

अभिनवगुप्तस्य शक्तिदर्शनं अद्वैतस्य उन्नततमं रूपम्। तत्र शिवशक्त्योः अभेदः, स्पन्दवादः, आभासवादः च समन्विताः। विश्वं न तु मिथ्या, किन्तु चैतन्यस्य प्रकाशः। अतः शक्तिः न केवलं सृष्टेः कारणम्, अपि तु स्वयं परमार्थतत्त्वम्।

सन्दर्भसूची

1. न हि निर्विमर्शः प्रकाशः समस्ति उपपद्यते वा। — *तन्त्रालोकः*, तृतीयाह्निकः, पृ. 2।
2. स च प्रकाशो विमर्शसार इति। — *ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी*, पृ. 217।
3. विमर्शशरीर एव प्रकाशो युक्तः। — तत्रैव, पृ. 213।
4. विमर्श एव प्रधानम् आत्मनः रूपम्। — तत्रैव, पृ. 200।
5. सर्वाः शक्तयः कर्तृत्वशक्तिः ऐश्वर्यात्मा समाक्षिपति। सा च विमर्शरूपा।— तत्रैव, पृ. 214।
6. विमर्श एव देवस्य शुद्धे ज्ञानक्रिये यतः। — *सर्वदर्शनसंग्रहः*।
7. द्रष्टव्यम् — *प्रत्यभिज्ञाहृदयम्*, पृ. 68।
8. द्रष्टव्यम् — *तन्त्रसारः*, पृ. 28।
9. *प्रत्यभिज्ञाहृदयम्*, पृ. 3।
10. तत्रैव, पृ. 2।
11. द्रष्टव्यम् — *ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी*, प्रथमभागः।
12. *तन्त्रालोकः*, प्रथमाह्निकः, पृ. 121।

13. *शिवदृष्टिः*, 3।2।
14. *तन्त्रालोकः*, प्रथमाह्निकः, पृ. 195।
15. *ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी*, प्रथमाध्यायः, तृतीयाह्निकः, पृ. 140।

सहायकग्रन्थसूची

अभिनवगुप्तः। *ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी।* प्रथमभागः एवं द्वितीय भाग काश्मीर-सीरीज्-ऑफ्-टेक्स्ट्स्-एण्ड्-स्टडीज्, सं. XXII, 1918।, सं. XXXIII, 1932।

आगमवागीशः कृष्णानन्दः। *बृहत् तन्त्रसारः*। सम्पादकः रसिकमोहनचट्टोपाध्यायः, नवभारत-पब्लिशर्स्, कोलकाता, 2001।

कविराजः गोपीनाथः। *तान्त्रिकसाधना च सिद्धान्तः*। वर्धमानविश्वविद्यालयः, 1416 (बाङ्गाब्दः)।

माधवाचार्यः। *सर्वदर्शनसंग्रहः*। सम्पादकः वासुदेवशास्त्री, भाण्डारकर-ओरियण्टल-रिसर्च्-इन्स्टिट्यूट्, पुणे, 1924।

मिश्रः परमहंस (सम्पा.)। *तन्त्रालोकः*। प्रथमभागः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी, 2000।

क्षेमराजः। *प्रत्यभिज्ञाहृदयम्*। सम्पादकः सुधांशुकुमारबाग्ची, चौखम्बा-सुरभारती-प्रकाशनम्, वाराणसी, 2017।

मुखोपाध्यायः उपेन्द्रनाथः (अनुवादकः)। *शिवतत्त्वप्रदीपिका*। नवभारत-पब्लिशर्स्, कोलकाता, 1420 (बाङ्गाब्दः)।

सोमानन्दः। *श्रीशिवदृष्टिः*। काश्मीरसंस्कृतग्रन्थावली, ग्रन्थाङ्कः 54, अरोमा-पब्लिशिङ्ग्-हाउस, दिल्ली, 1394।

State Aided College Teacher
Department of Sanskrit
Raja Peary Mohan College
Uttarpara, West Bengal
Mob : 8584945935
Res : 23/C, A C Sarkar Road
Saptarishi Apartment
Block Pulaha
Flat 2 A
Kolkata (W.B.)
Pin. 700076

तन्त्रागमदृष्ट्या परावाचोऽनुशीलनम्

डॉ. सुभाष पैन्यूली

शोधसारः

"मूलाधारात्प्रथममुदितो यस्तु भावः पराख्यः"। मूलाधारस्थपवनसंस्कारीभूता मूलाधारस्था शब्दब्रह्मरूपा स्पन्दशून्या बिन्दुरूपिणी परा वागुच्यते। तत्र परावाचः स्वरूपनिर्धारणे सन्ति मतभेदाः। तन्त्रागमे तावद् "चिच्छक्तिरेव परा वागिति" अभिनवगुप्तपादाचार्या मन्वते शैवागमद्वैतवादिनश्च बिन्दोरुच्छूनावस्थैव परा वागिति वदन्ति। केचन शान्ताम्बिकयोः शक्त्योः सामरस्यमेव परावागिति जानन्ति। अपरे च पुनः प्रकाशरूपपीठस्योल्लासो हि नाम परा वागिति कल्पयन्ति। एवमेव तन्त्रागमेषु बहुविधसंवादाः परां वाचमवलम्ब्य प्रचलिता दरीदृश्यन्ते। भर्तृहरिस्तु पराशक्तिमेव परावाचमङ्गीकरोति। *वाक्यपदीये* प्रकृतिः, पराप्रकृतिश्च शब्दद्वयं समुपलभ्यते। प्रकृतिस्तु सकलवाग्विकाराणां कारणं प्रतिभा, पश्यन्ती च नाम्नोऽवबोध्यते। अस्याः शान्तावस्थैव परपश्यन्ती पराप्रकृति वास्ति। शोधपत्रेऽमुष्मिन्नित्यादीनां विषयाणां परावाचो सन्दर्भे तन्त्रागमदृष्ट्यानुशीलनं विधीयते।

सङ्केतशब्दाः

परावाक्, आगमः, तन्त्रः, अनुशीलनम्, प्रतिभा, चिच्छक्तिः।

प्रस्तावना

"श्रुतिस्तु द्विविधा प्रोक्ता वैदिकी तान्त्रिकी तथा"। वैदिकश्रुतिमूलानि साङ्ख्यादिदर्शननानि। तान्त्रिकश्रुतिमूलाः तन्त्रागमास्तु शैवशाक्तवैष्णवभेदेन त्रिधा विभनक्ति। तत्र शैवागमाः कुलक्रमस्पन्दप्रत्यभिज्ञाभेदेन चतुर्धा भवन्ति। भारतीयज्ञानपरम्परायां तन्त्रागमसाहित्यं प्राचीनतमेषु समृद्धाऽध्यात्मिकदर्शनपरम्परास्वन्यतमन्नात्र वैमत्यम्। वेदोपनिषदां दार्शनिकतत्त्वानां व्यवहारपरकं साधनात्मकञ्च स्वरूपं तन्त्रागमग्रन्थेषु सुस्पष्टतया निरूपितम्। तन्त्रशब्दस्य व्युत्पत्तिः "तनोति विपुलानर्थान् त्रायते बन्धनादिति तन्त्रम्" इति प्रसिद्धा; अर्थाद्यद् ज्ञानं साधकस्य चेतनां विस्तारयति संसारबन्धनाच्च विमोचयति तत्तन्त्रम्। एवमेव आगमादत्र तात्पर्यं वर्तते यत्सिद्धगुरुशिष्यपरम्परयोपदेशक्रमाद् सम्प्राप्तो ज्ञानराशिरूपशास्त्रसन्दर्भ इति। । तन्त्रागमपरम्परा केवलं धार्मिककर्मकाण्डस्य निर्देशिका नास्ति, अपि तु सा दर्शनं, योगः, मन्त्रः, यन्त्रं, ध्यानं, देवताराधना, मन्दिरवास्तु, मूर्तिशास्त्रम्, नृत्यं, संगीतं, समाजव्यवस्था च इत्यादीनामनेकविषयाणां समन्वितं ज्ञानकोशरूपं वहति। अस्याः परम्परायाः मूललक्ष्यं जीवस्य शिवेन, शक्त्या वा परमात्मना सह ऐक्यानुभूतिः, अन्तःकरणशुद्धिः, शक्तिजागरणञ्च विद्यते। एवं ह्याह –

तनोति विपुलानर्थान् तत्त्वमन्त्रसमन्वितम्।
त्राणं च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्यभिधीयते॥

आगतं शिववक्त्रेभ्यः गतं च पार्वतीमुखे।
मतञ्च वासुदेवेन तस्मादागम उच्यते॥

तन्त्रागमदृष्ट्या परावाचोऽनुशीलने वाक्शब्दस्य निष्पत्तिः "वच् परिभाषणे"[2] धातोः "क्विब्वचिप्रच्छपायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च"[3] इत्यमुनौणादिकेन सूत्रेण क्विप्-प्रत्ययस्य संयोजनेन सञ्जायते। तदास्य शाब्दिकोऽर्थो भवति "उच्यतेऽसौ अनया वेति वाक्" अथ च "वाचयति गुणानिति वाक्" इत्यर्थः सम्पद्यते। अविद्वांस इमां वाचं पश्यन्नपि न पश्यति अथ च शृणवन्नपि शृणोति। विद्वांस इमां वाचं सार्थं शृणोति पश्यति वेति। तेभ्यो विद्वद्भ्यो वाग्विद्भ्यश्च सा वाक् आत्मानं तथैव विवृणोति[4] यथा जाया पत्ये कामयमाना सुवासाः स्वमात्मानं विवृणुते। सूपेन यथा सक्तुनः परिशोधनं विधीयते तथैव वाग्विद् बुद्धिसामार्थ्याद् वाचः परिशोधनं विधाय सुसंस्कृतं करोति। तदा तस्य वाग्विदो वाचि लक्ष्मीः निवसति।[5] विद्वद्भिर्मनीषिभिर्ब्राह्मणैश्च वाचः परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी, चतस्रभेदाः प्रतिपादिताः। तत्र परावाक् अनाधिनिधना वर्त्तते। ततश्चैव सकलस्थावरजङ्गमजगत् समुद्भूतम्। मूलाधारात् आस्यपर्यन्तं चतस्रो वाचो विकसीकृता भवन्ति। यस्माद् क्रमाद् सा विवर्तते तेन विपरीतक्रमेण तस्याः संवर्तो भवति। तस्या एव परावाचोऽनुशीलनं शोधपत्रेऽस्मिन् तन्त्रागमदृष्ट्या क्रियते।

विषयोपस्थापनम्

"पूर्णात्वात् परा"[6] परावाक् शब्दस्य चरमावस्था विद्यते। एनामतिक्रम्य परब्रह्मणः परमशिवस्य वा पदवी प्राप्यते। अमुष्याः सकलविश्वस्य आस्वादात्मकचमत्काररूपप्रत्यवमर्शद्वारा कथनत्वाद् वाक्[7] सञ्ज्ञा विधीयते। सेयं परावाक् चिद्रूपं स्वात्मविश्रान्तम् अहम् इत्यस्मिन् नित्योदितपरमात्मनो मुख्यस्वातन्त्र्य-रूपादन्यनिरपेक्षभूयो विद्यमाना विद्यते। अन्यनिरपेक्षतैव परमार्थत आनन्दः, ऐश्वर्यं, स्वातन्त्र्यं, चैतन्यञ्च वर्त्तते।[8] देशकालाभ्यामविशिष्टा वागियं स्वतस्सिद्धा महासत्ता नाम्नः कथ्यते। एनां परावाचं परमेष्ठिनः परमशिवस्य परमन्त्रात्मको विमर्शरूपो हृदय उच्यते। विमर्शनमतिरिच्य मन्त्रस्य किमप्यन्यं स्वरूपं नास्ति अतः विमर्शनमेव परावाङ्मयं विद्यते। अत एवोक्तम् –

सा स्फुरता महासत्ता देशकालविशेषिणी।
सैषा सारतया प्रोक्ता हृदयं परमेष्ठिनः॥[9]

जगतो यद् साररूपं तदेव परावाग्रूपी मालिनीशक्तिरिति। सैव मन्त्राणां जननी विद्यते।[10] परा तुरीयावस्थास्ति। सेयं अव्यक्तसञ्ज्ञकः शब्दोऽस्ति। जगद्रूपाऽङ्कुराय कन्दात्मकत्वादियं परावाक् कारणबिन्दुः नाम्नोऽप्युल्लिख्यते। स्वप्रतिष्ठत्वाद् सेयं शब्दब्रह्मरूपा परावाक् निःस्पन्दा मन्यते। इच्छाशक्तिः, ज्ञानशक्तिः, क्रियाशक्तिरेताः त्रिस्रः शक्तयोऽत्र समष्टिरूपेण विराजन्ते। परावाचि प्रकाशांशम् अम्बिका तथा विमर्शांशं शान्ता कथ्यते।[11] अमुष्यां परावाचि सकलवाच्यवाचकवैचित्र्यं मयूराण्डरससदृशम् अनभिव्यक्तरूपेणाभेदापन्नं भूयो विद्यते।

"मूलाधारात् प्रथमुदितो यश्च भावः पराख्यः"[12] *प्रपञ्चसारस्य* द्वितीयपटलगतस्यास्य श्लोकस्य व्याख्यायां पद्मपादाचार्यो वक्ति यद् "मूलं जगन्मूलभूता परिणामिनी मायाशक्तिः। तस्याः आधारभूतश्चिदात्मामूलाधारः। सर्वगतस्यापि तस्याभिव्यक्तिस्थानत्वात् गुदेमेढ्रमध्योऽपि मूलाधारः। तस्मात् प्रथममुदितः चैतन्याभासविशिष्टतया प्रकाशिका माया निष्पन्दा परा वागित्यर्थः। आचार्यपद्मपादेन तु वाचं पञ्चपदी सप्तपदी चापि कथिता। तेनोक्तम् " सूक्ष्मा, परा पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरीति पञ्चपदीं वाचमाश्रित्याह मूलाधारादिति। सप्तपद्यपि वागनेनैव सूचिता शून्यसंवित्सूक्ष्मादीनि सप्तपदानि। तत्रानुत्पन्ना निष्पन्दा शून्या। वागुत्पित्सुः संवित्। उत्पत्त्यवस्था सूक्ष्मा मूलाधारात् प्रथममुदिता परावागिति विभागो विद्यते।[13]

तस्माच्छून्यं समुत्पन्नं शून्यात्स्पर्शसमुद्भवः।
तस्मान्नादः समुत्पन्नं पूर्वं वै कथितस्तव॥[14]

वाचः पञ्चपदी सप्तपदी च विभागानां विश्लेषणं विधाय विज्ञायते यदाचार्यपद्मपादेन स्वच्छन्दतन्त्रस्य उपर्युक्तश्लोकमाधाय परावाचः शून्यादीनि सप्तपदानि भेदानि निगदितानीति। काश्मीरशैवदर्शने प्रतिभा परावाच्चैकार्थे वर्त्तते। परमेश्वरस्य विश्वरचनां प्रत्यन्यनिरपेक्षतामेव परा अथवा प्रतिभादेवी कथ्यते।[15] ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिन्यामाचार्याभिनवगुप्तेनाह "सा च परमेश्वरी पराभट्टारिका तथाविधनिरतिशयाभेद-भागिन्यपि पश्यन्त्यादिकाः परापराभट्टारिकादिस्फाररूपा अन्तःकृत्य तत्तदनन्तवैचित्र्यगर्भमयी परामृशते च प्रथमां प्रतिभाभिधानां सङ्कोचकलङ्ककालुष्यलेशशून्यां भगवतीं संविदम्।[16] विमर्शात्मिका स्वातन्त्र्यरूपप्रतिभा अथवा परावागेव परमशिवस्य शक्तिरस्ति। येन सः परमशिवः शक्तिमान् भाजते। यथोक्तम् –

यदुन्मीलनशक्त्यैव विश्वमुन्मीलति क्षणात्।
स्वात्मायतनविश्रान्तां तां वन्दे प्रतिभां शिवाम्॥[17]

आचार्यभर्तृहरिणा त्रिविधवाचो व्याख्यानन्निगदितम्। एतत्स्वरूपत्रयं पश्यन्तीमध्यमावैखरीनामभिरुच्यते।[18] *वाक्यपदीये* प्रकृतिः, पराप्रकृतिश्च[19] शब्दद्वयं समुपलभ्यते। प्रकृतिस्तु सकलवाग्विकाराणां कारणं प्रतिभा, पश्यन्ती च नाम्नोऽवबोध्यते। अस्याः शन्तावस्थैव परपश्यन्ती पराप्रकृति वास्ति। यथोक्तं हरिवृत्तौ – वाग्विकराणां प्रकृतिं[20] प्रतिभामनुपरैति। तस्माच्च प्रत्यस्तमितसर्वविकारोल्लेखमात्रां परां[21] प्रकृतिं प्रतिपद्यते। यद्यपि *वाक्यपदीये* परावाचः साक्षादुल्लेखो नास्ति, तदपि परपश्यन्या पराप्रकृत्या वा तां परावाचं ज्ञातुं शक्यते। आचार्यहेलराजो वक्ति यत् पश्यन्त्यां परायाश्च मूलतो भेदो नास्ति। तदाह – "संविच्च पश्यन्तीरूपा परावाक् शब्दब्रह्ममयी इति ब्रह्मतत्त्वं शब्दात् पारमार्थिकान्न भिद्यते।"[22] पराप्रकृतिः शब्दब्रह्मणः सुषुप्तिरवस्था तथा प्रकृतिः पश्यन्ती वा जागरावस्था विद्यते। सैव प्रतिभेति। तदुक्तं हरिवृत्तौ– "काचित् स्वाभाविकी प्रतिभा। परस्याः प्रकृतेः प्रथमं सत्तालक्षणमात्मानं महान्तं प्रत्यानुगुण्यं सुषुप्तावस्थस्यैव प्रबोधानुगुण्यं फलसत्तामात्रं निद्रायाः।"[23] एवं ह्याह –

द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति॥[24]

अम्बाकर्त्रीकारेणाऽचार्यश्रीरघुनाथशर्मणापि पश्यन्त्या द्वैविध्यं प्रतिपाद्य परावाचोऽपि तत्रैवान्तर्गतत्वं स्पष्टीकृतम्। यथा च सगुणनिर्गुणादिभेदेन द्विविधतया वर्णितस्यापि ब्रह्मण एकत्वं न विरुद्धम्, तथैवैका प्रत्यवमर्शिनी वाग् गुणमहिम्ना कदाचित् पश्यन्तीति कदाचिच्च परेति संज्ञया कथ्यते, अतः पश्यन्त्येव परा । तथा हि- "पश्यन्ती तु परापरा चेति द्विविधा। तत्रापरा प्रतिसंहृतवर्णक्रमा नाभिदेशस्था बुद्धिमात्रग्राह्या बुद्धिमात्रस्वरूपा च सत्यपि ग्राहकबुद्धेरभेदे समाविष्टा। विशुद्धा च परा क्रमादिराहित्यरूपविशुद्धियुक्तपश्यन्ती-रूपशब्दात्मकबुद्धिरूपत्वात्। सा च वाग् योगविदाम्, ते हि तामक्रमां वाचं वेदयन्ते"।[25] सेयं परावागेव खलु शब्दब्रह्म विद्यते। तेनाचार्यभर्तृहरिणा ब्रह्मणा सायुज्यमोक्षस्य कामना कारिकायामपि कृता।[26] अत आचार्येण भर्तृहरिणा *वाक्यपदीयस्य* प्रथमकारिकायामेव अनादिनिधनस्याक्षरस्य शब्दब्रह्मणो निर्देशेन परावाचः सङ्केतः प्रदत्तः। तदाह –

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥[27]

परवर्त्तिभिः वैयाकरणाचार्यैः परावाच उल्लेखः स्पष्टरूपेण विहितम्। तेषु नागेशभट्टोऽग्रगण्यं वर्त्तते। यथोक्तम्-

परा वाङ्मूलचक्रस्था पश्यन्ती नाभिसंस्थिता।
हृदयस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कण्ठदेशगा॥

आचार्यनागेशभट्टः *परमलघुमञ्जूषायां* चतसृषु वाक्षु परावाचो लक्षणं वक्ति यत् "तत्र मूलाधारस्थपवनसंस्कारीभूता मूलाधारस्था शब्दब्रह्मरूपा स्पन्दशून्या बिन्दुरूपिणी परा वागुच्यते"। अयम्भावोऽत्र गुदलिङ्गान्तरे चक्रमाधाराख्यं चतुर्दलं विद्यते।[28] कुण्डलिनी ब्रह्मशक्तिराधारपङ्कजे अस्ति। इत्यपि च निर्दिष्टो देहभागस्तत्स्थो यो वायुः तेनसंस्कारीभूता इच्छया जातेन प्रयत्नेन सह मूलाधारस्थपवनसम्बन्ध एव तत्संस्कारस्तेनोन्मुखीकृता मूलाधारस्थपवनसंस्कारीभूतेति। अद्वितीयस्य ब्रह्मणः क्रीडाया अभावादिच्छोत्पद्यते। ततो बिन्दुरूपमव्यक्तं त्रिगुणं जायते। भिद्यमानात्तस्माद् बिन्दोरव्यक्तात्मको रव उत्पद्यते। स एव शब्दब्रह्मरूपेति। स्पन्दः सञ्चरणं क्रिया वा तच्छून्या तद्रहिता स्पन्दशून्येति। परमेश्वरस्य सिसृक्षात्मकमायावृत्तेर्बिन्दुरूपमव्यक्तं त्रिगुणं जायते। इदमेव शक्तितत्त्वम्। तस्य बिन्दोरचिदंशो बीजम्, चिदचिन्मिश्रोंऽशो नादः, चिदंशो बिन्दुरिति व्याख्यातो बिन्दुश्चिदंशस्तत्स्वरूपा, कारणबिन्दुरूपा, परावाक् कथ्यते। अत्यन्तसूक्ष्मत्वेनाग्राह्यत्वात्सूक्ष्मा इत्यप्युच्यते। सेयं परावाग्ब्रह्म- योगिनां समाधौ निर्विकल्पकसविकल्पकज्ञानविषय इत्युच्यते।

सर्वस्यास्य जगत आदिभूतं सर्वाधिष्ठाता सर्वदैकरसः परमशिवः। तदात्मभूता च संकोचप्रसरणशीला पराशक्तिः परमशिवस्यैकरसत्वेऽपि सेयं परा शक्तिरेव तदाधारेण जगत्पटमिमं प्रसारयति संकोचयति च। तन्त्रागमे ताविमौ परमशिवपराशक्तिश्व प्रकाशविमर्शशब्दाभ्यां व्यवह्रियेते। पराशक्तिः चिच्छक्तिः, स्पन्दः, आरुण्य इत्यादयः शब्दाश्चैकार्था एव। अस्या एव चिच्छक्तेः प्रथमोन्मेषौ बिन्दुनादौ वर्तेते। तत्र बिन्दुरेव त्रिगुणमव्यक्तमिति मञ्जूषायां नागेशभट्टाः प्रतिपादयति। तदाह- ततो बिन्दुरूपमव्यक्तं त्रिगुणं जायते। इदमेव शक्तितत्त्वम्। तस्य बिन्दोरचिदंशो बीजम्। चिदचिन्मिश्रोंऽशो नादः। चिदंशो बिन्दुरिति । अचिच्छब्देन शब्दार्थोभयसंस्काररूपाऽविद्योच्यते। अस्माद् बिन्दोः शब्दब्रह्मपरनामधेयम्, वर्णादिविशेषरहितं, ज्ञानप्रधानं, सृष्ट्युपयोग्यवस्थाविशेषरूपं, चेतनमिश्रं, नादमात्रमुत्पद्यते। एतद् जगदुपादानमेव 'रव', 'परा' आदिशब्दैर्व्यवह्रियते। एतत्सर्वगतमपि प्राणिनां मूलाधारे संस्कृतपवनचलनेनाभिव्यज्यते। ज्ञातमर्थं विवक्षोः पुंस इच्छया जातेन प्रयत्नेन योग एव मूलाधारस्थपवनसंस्कारः, तदभिव्यक्तं शब्दब्रह्म स्वप्रतिष्ठतया निष्पन्दं परावागित्युच्यते। अयमपि च विशेषस्तैर्व्याख्यातो यन्महानादस्योर्ध्वं शक्त्यात्मिका कोटिरेका ब्रह्मरन्ध्रस्य मध्यस्थे इच्छाकारणभूते व्यक्ते आदिनादे लीना तिष्ठति । अपरा कोटिस्तावदधः शक्तिरूपेण भ्रूमध्यं भित्त्वा मेरौ प्रसरति। मेरोरधः प्रदेशे मूलाधारचक्रे सैव कुण्डलिन्यात्मना परिणता भवति। मेरुरत्र शरीरव्यापी वंशाकारः। आदिनादश्च ज्योतीरूपः, चिच्छक्तेः प्रथमो विवर्तः। सा हि महाशक्तिर्लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपेत्युच्यते। तत्र नाद एवायं तस्यालक्ष्यं रूपम्। तथा च ब्रह्मरन्ध्रेऽपि महानादस्योर्ध्वं शक्त्यात्मिकां कोटिमादिनादे प्रलीनामभ्युपगच्छद्भिस्तैरप्यन्तः चिच्छक्तिरूपतैव कुण्डलिन्यपरपर्यायायाः परस्या वाचः स्वीकृतेति । सामञ्जस्यं च मतयोरनयोः सम्यक् प्रदर्शितम्। अभिनवगुप्तपादाचार्यादयस्तु- तत्सृष्ट्वा तदेवोपाविशदिति न्यायेन सृष्टेषु प्राणिष्वनुप्रविश्य मूलाधारे कुण्डलिनीरूपेण प्रतितिष्ठन्ती चिच्छक्तिरेव परा वागिति प्रतिजानते । चिच्छक्तेरुत्पद्यमानो बिन्दुः पश्यन्ती वागिति उत्तरार्द्धेनात्र स्फुटीकृतम्। श्रीमताचार्येण नागेशेन महाभारतस्य श्लोकमेकमुद्धृत्य श्रीवेदव्यासोऽपि परां शक्तिमेव परां वाचमाहेत्युक्तम् -

स्वरूपज्योतिरेवान्तः परावागनपायिनी।
तस्यां दृष्टस्वरूपायामधिकारो निवर्तते॥

वाक्यपदीयस्यादावेव भर्तृहरिश्च तामेव परां शक्तिं शब्दतत्त्वमिति पदेन जग्राहेत्युक्तमेव। अस्याः परशक्तेः शब्दतत्त्वस्य वा निर्विकल्पकसमाधावेव साधकानामनुभवो नान्येषाम् । इयं हि मूलाधारमधिशेते। तद्धि चक्रं देहमध्ये वर्तते। देहमध्यन्नाम-

पाय्वन्ताद् द्वयङ्गुलादूर्ध्वं लिङ्गाच्च द्व्यङ्गुलादधः।
मध्यमेकाङ्गुलं यच्च देहमध्यं प्रचक्षते॥[29]

अत्रैव च ब्रह्मशक्तिः, भुजङ्गाकारा कुण्डलिनी वा सुषुम्णाख्यं विवरमध्यास्ते। तां च योगिन उद्बोध्यः ब्रह्मरन्ध्राख्येन चक्रेण सार्धं संयोजयन्तीत्यन्यत्र विस्तरः।

निष्कर्षः

साम्प्रतं तस्य परावाचः निष्कर्षं विचार्यते। मूलाधारस्थपवनसंस्कारीभूता मूलाधारस्था शब्दब्रह्मरूपा स्पन्दशून्या बिन्दुरूपिणी परा वागुच्यते। तत्र परावाचः स्वरूपनिर्धारणे सन्ति मतभेदाः। तन्त्रागमे तावद् "चिच्छक्तिरेव परा वागिति" अभिनवगुप्तपादाचार्या मन्वते शैवागमद्वैतवादिनश्च बिन्दोरुच्छूनावस्थैव परा वागिति वदन्ति। केचन शान्ताम्बिकयोः शक्त्योः सामरस्यमेव परावागिति जानन्ति। अपरे च पुनः प्रकाशरूपपीठस्योल्लासो हि नाम परा वागिति कल्पयन्ति। एवमेव शैवतन्त्रेषु बहुविधसंवादाः परां वाचमवलम्ब्य प्रचलिता दरीदृश्यन्ते। भर्तृहरिस्तु पराशक्तिमेव परावाचमङ्गीकरोति। वाक्यपदीये प्रकृतिः, पराप्रकृतिश्च शब्दद्वयं समुपलभ्यते। प्रकृतिस्तु सकलवाग्विकाराणां कारणं प्रतिभा, पश्यन्ती च नाम्नोऽवबोध्यते। अस्याः शान्तावस्थैव परपश्यन्ती पराप्रकृति वास्ति। यथोक्तं हरिवृत्तौ – वाग्विकराणां प्रकृतिं प्रतिभामनुपरैति। तस्माच्च प्रत्यस्तमितसर्वविकारोल्लेखमात्रां परां प्रकृतिं प्रतिपद्यते। यद्यपि वाक्यपदीये परावाचः साक्षादुल्लेखो नास्ति, तदपि परपश्यन्या पराप्रकृत्या वा तां परावाचं ज्ञातुं शक्यते। आचार्यहेलराजो वक्ति यत् पश्यन्त्यां परायाश्च मूलतो भेदो नास्ति। तदाह – "संविच्च पश्यन्तीरूपा परावाक् शब्दब्रह्ममयी इति ब्रह्मतत्त्वं शब्दात् पारमार्थिकान्न भिद्यते।"[30] शाब्दिकानां च तदेव शिरोधार्यम्। शाब्दिकेषु तु पश्यन्ती प्रतिभा एकार्थेऽस्ति परञ्च तन्त्रागमे प्रतिभा परावच्चैकार्थे दरीदृश्यते। परमेश्वरस्य विश्वरचनां प्रत्यन्यनिरपेक्षतामेव परा अथवा प्रतिभादेवी कथ्यते। तदित्थं तन्त्रागमनदृष्ट्या परशक्तिरेव परावागिति निश्चितम्। अस्तु वा यः कोऽपि मतभेदः, वाङ्मनसातीता केवलं योगिनां निर्विकल्पकसमाधिगम्या, शब्दब्रह्मपदाभिधेया, सर्वमूलभूता, परावागित्यत्र तु न कस्यापि सन्देह इति।

सहायकसन्दर्भस्रोतोविवरणम्

प्राथमिकस्रोतांसि

1. अभिनवगुप्तः। (1985). *तन्त्रसारः*/व्या. डॉ. परमहंसमिश्रः, शक्तिप्रकाशनम् वाराणसी।
2. सिद्धसोमानन्दः। (1985). *शिवदृष्टिः*/व्या. कृष्णानन्दसागरः। ज्योतिप्रेसमध्यमहेश्वरप्रकाशनम्, वाराणसी।
3. क्षेमराजः। (2007). *प्रत्यभिज्ञाहृदयम्*/व्या. डॉ. शिवशंकर अवस्थी। चौखम्बाप्रकाशनम् वाराणसी।
4. नागेशभट्टः। (2017). *परमलघुमञ्जूषा*/व्या. लोकमणिदाहालः। चौखम्बासुरभारतीप्रकाशनम् वाराणसी।
5. भर्तृहरिः। (1997). *वाक्यपदीयम्* (ब्रह्मकाण्डम्)। व्या. डॉ. शिवशंकर अवस्थी। चौखम्बाविद्याभवनप्रकाशनम् वाराणसी।
6. दीक्षितः,भट्टोजी।(1985). *वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी*/व्या. श्रीगोपालदत्तपाण्डेयः। चौखम्बासंस्कृतप्रतिष्ठानम्, वाराणसी।
7. बहादुरः, राजाराधाकान्तदेव। (1967). *शब्दकल्पद्रुमः* (पञ्चभागाः)। चौखम्बासंस्कृतग्रन्थमालाप्रकाशनम्, वाराणसी।

द्वितीयकस्रोतांसि

1. अवस्थी, डॉ. शिवशंकर। (2006). *मन्त्र एवं मातृकाओं का रहस्य*। चौखम्बाविद्याभवनप्रकाशनम् वाराणसी।
2. श्रीमाली, डॉ. नारायण। (2016). *मन्त्र रहस्य*। सम्पा. कैलाशचन्द्रः। हिन्दपुस्तकभाण्डारप्रकाशनम्, दिल्ली।

अन्तर्जालीयस्रोतांसि

https://sa.m.wikisource.org/wiki.
https://archive.org/search.php?query=%28sanskrit%29
http://www.sanskrit.nic.in/Thesisalld.pdf

सन्दर्भसूची

1. भेदोद्ग्राहविवर्तेन लब्धाकारपरिग्रहा। आम्नाता सर्वविद्यासु वागेवप्रकृतिःपरा॥ *वाक्यपदीयम्*, स्वोपज्ञटीका -
2. *चुरादिगणः*, धातुसंख्या - 2544
3. *उणादिसूत्रम्* – 2।5
4. उतत्वःपश्यन्न ददर्श वाचमुतत्वःशृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
   उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्यउशती सुवासाः॥ — *ऋग्वेदः* – 10।71।4॥
5. सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरामनसा वाचमक्रमत।
   अत्रासखायःसख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि॥ — *ऋग्वेदः* – 10।71।4
6. *ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी*, पृ. सं.- 205
7. वक्ति, विश्वमपलपतिप्रत्यवमर्शेनइति च वाक्। *मन्त्र एवं मातृकाओं का रहस्य*, पृ. सं.- 38
8. *ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी*, पृ. सं.- 107
9. *ईश्वरप्रत्यज्ञाज्ञकारिका* – 4।14।2॥
10. चिन्मात्रमेवदेवी च सा परा परमेश्वरी॥ — *श्रीतन्त्रालोकः* – 6।180
11. आत्मनःस्फुरणं पश्येद्यदासा परमाकला। अम्बिकारूपमापन्ना परावाक्समुदीरिता॥ — *योगिनीहृदयम्* – 1।26॥
12. *प्रपञ्चसारम्*-2।44
13. *प्रपञ्चसारम्*, द्वितीयपटल टीका, पृ. सं.-34
14. *स्वच्छन्दतन्त्रम्* – 5।11॥
15. अनन्यापेक्षितायास्य विश्वात्मत्वं प्रतिप्रभोः। तां परां प्रतिभां देवीं सङ्गिरन्ते ह्यनुत्तराम्॥ *श्रीतन्त्रालोकः* – 3।66॥
16. *परात्रिंशिकाविवरणम्*, पृ. सं.-102
17. *ध्वन्यालोकलोचनटीका*, प्रथमोन्मेषः, पृ. सं. -
18. वैखर्या मध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्चैतदद्भुतम्। अनेकतीर्थभेदायास्त्रया वाचःपरं पदम्॥ *वाक्यपदीयम्* – 1।133 ॥
19. भेदोद्ग्राहविवर्तेन लब्धाकारपरिग्रहा। आम्नाता सर्वविद्यासु वागेवप्रकृतिःपरा॥ *वाक्यपदीयम्*, स्वोपज्ञटीका -

20. प्रकृतिमिति। कारणम्। किं तदित्याह–प्रतिभामिति।
येयं समस्तशब्दार्थकारणभूताबुद्धिः यां पश्यन्तीत्याहुः। — *वाक्यपदीयम्*, भूमिका, पृ. सं. – 13 (वृषभाचार्यटीका)
21. प्रत्यस्तमितइति। विकाराख्या उल्लेखाः, ते परस्मिन्ब्रह्मणिप्रत्यस्तमिताःतस्यसर्वविकल्पातीतत्वात्।
परामिति। उत्कृष्टाम्। प्रकृतिं सर्वयोनिं प्रतिपद्यते तामेवैति। तदेवं वाग्विकारं प्रतिभायामुपसंहरति।
तामपि चास्मिन्ब्रह्मणि। *वाक्यपदीयम्*, भूमिका, पृ. सं. – 13 (वृषभाचार्यटीका)
22. *वाक्यपदीयम्*, भूमिका, पृ. सं. – 14
23. *वाक्यपदीयम्* – 2।152॥
24. *मैत्रायणीउपनिषद्* – 6।22॥
25. *वाक्यपदीयम्*, अम्बाकर्त्रीटीका – 1।142॥
26. अपि प्रयोक्तुरात्मानं शब्दमन्तरवस्थितम्। प्राहुर्महान्तमृषभं येन सायुज्यमिष्यते॥ *वाक्यपदीयम्* – 1।121॥
27. *वाक्यपदीयम्* -1।1॥
28. पाय्वन्तादृद्व्यङ्गुलादूर्ध्वलिङ्गाच्चद्व्यङ्गुलादधः। मध्यमेकाङ्गुलं यच्च देहमध्यं प्रचक्षते॥ *परमलघुमञ्जूषा*, पृ. स. 91
29. *संगीतरत्नाकरः* – 1।2।119॥
30. *वाक्यपदीयम्*, भूमिका, पृ. सं. – 14

(सहायकाऽचार्यः)
संस्कृत-विभागः
एन.आर.ई.सी. महाविद्यालयः,
खुर्जा, बुलन्दशहर, उ. प्र. 203131.
सम्पर्कसूत्रम्- 8126787973

चतुर्विध वाणी की आगमिक व तान्त्रिक साधना का स्वरूप

डॉ. हर्षदेव माधव (प्रकाशानन्दनाथ महानित्याम्बा)

शाक्ततन्त्र में साधक चार वाणी के अलग-अलग न्यास करके मन्त्रों के द्वारा वाणी की भूमिकाओं का पार करता है। *प्रपञ्चसारसारतन्त्र* में कहा है—

अथ परान्यासः

शिरस्यधोमुखस्थितसहस्रदळकमल-कर्णिकामध्यगतपूर्णशिशिरकरविम्बे अकथा (थ)कगर्भं शिखाग्रं शृङ्गाटमनुस्मृत्य आधारचतुर्दलकमले पूर्ववत् शृङ्गाटं विभाव्य हार्धकळारूप-वह्निकुण्डलिनीं लिङ्गाकारतया समुल्लास्य षट्सरसिजग्रन्थिभेदक्रमेण योनिरूपाममृतकुण्डलिनीं मध्यम् आवेश्य अमृतानलकुण्डलिन्योः मिथो मथनसंभूतारुणामृतसारैः तुरीयं स्मारं स्मारं आत्मानं सिञ्चेत्।। तत्र शृङ्गाटमिति त्रिकोणम्। हार्धकला इति च त्रिकोणम् ॥ *इति परान्यासः//*

इसके बाद परान्यास का विधान है— साधक अपने सिर के ऊपर अधोमुख (नीचे की ओर मुख किए हुए) स्थित सहस्रदल कमल की कर्णिका (बीज-भाग) के मध्य स्थित पूर्ण चन्द्रमण्डल का ध्यान करे। उस चन्द्रबिम्ब में स्थित अकथादि-वर्णमय शिखाग्ररूप त्रिकोण (शृङ्गाट) का स्मरण करे। फिर मूलाधार के चतुर्दल कमल में पूर्ववत् उसी शृङ्गाट (त्रिकोण) का चिन्तन करे और वहाँ हार्ध-कला-स्वरूप अग्निकुण्डलिनी को लिङ्गाकार रूप में जाग्रत् करे। तत्पश्चात् षट्चक्ररूपी कमलों के ग्रन्थियों का भेदन करते हुए उस कुण्डलिनी को ऊपर ले जाकर योनिरूप अमृतकुण्डलिनी के मध्य में स्थापित करे। फिर अग्निकुण्डलिनी और अमृतकुण्डलिनी— इन दोनों के परस्पर मन्थन से उत्पन्न अरुणवर्ण अमृत-सार द्वारा तुर्यस्वरूप कामबीज (स्मारं), याद करते करते तथा अपने सम्पूर्ण आत्मभाव का अभिषेक (सिञ्चन) करे। यहाँ "शृङ्गाट" का अर्थ त्रिकोण है और "हार्धकला" का अर्थ भी त्रिकोण ही है। इस प्रकार परा न्यास सम्पन्न होता है।

तान्त्रिक विवेचन

यह परान्यास सामान्य देह-न्यास नहीं है, बल्कि कौल-श्रीविद्या की आन्तरिक कुण्डलिनी-क्रिया का अत्यन्त गूढ़ विधान है।

1. अधोमुख सहस्रार और चन्द्रमण्डल

सहस्रार को यहाँ अधोमुख कहा गया है। इसका कारण यह है कि पराशक्ति का अमृत प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर झरता रहता है।

सहस्रार में स्थित पूर्णचन्द्र— 1.शुद्धचैतन्य 2.पराशक्ति 3.अमृतशिवतत्त्व का प्रतीक है। श्रीविद्या में यही बिन्दुस्थान है जहाँ शिव और शक्ति अभिन्न हैं।

2. शृङ्गाट (त्रिकोण) का रहस्य

ग्रन्थ में स्पष्ट कहा गया है— तत्र शृङ्गाटमिति त्रिकोणम्। यह त्रिकोण कोई साधारण ज्यामितीय आकृति नहीं है। यह है— 1.कामकला, 2.योनिचक्र, 3.त्रिपुरासुन्दरी का मूलरूप इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्ति का संग और 4.श्रीचक्रका मूल भी यही त्रिकोण है। अतः साधक ऊपर के सहस्रार और नीचे के मूलाधार दोनों में एक ही शक्ति-त्रिकोण का दर्शन करता है।

3. हार्धकला रूप अग्निकुण्डलिनी

मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी को यहाँ "हार्धकळारूप-वह्निकुण्डलिनी" कहा गया है। अर्थात् वह अग्निरूपिणी शक्ति है। यह शक्ति— 1.सुप्तचेतना, 2.जीवभाव, 3.क्रियाशक्ति, 4.कुण्डलितपराशक्ति है। "लिङ्गाकारया समुल्लास्य" अर्थात् उसे जागृत करके शिवलिङ्ग रूप मार्ग से ऊपर उठाया जाता है।

4. षट्सरसिजग्रन्थिभेद

यह अत्यन्त महत्वपूर्ण पद है। षट्सरसिज = छह चक्र— 1.मूलाधार, 2.स्वाधिष्ठान, 3.मणिपूर, 4.अनाहत, 5.विशुद्धि और 6.आज्ञा। इनमें स्थित ग्रन्थियों का भेदन कुण्डलिनी-योग का मूल कार्य है। यह भेदन वस्तुतः— 1.देहबुद्धि, 2.प्राणबन्ध, 3.मनोविकार, 4.अहंकार की सीमाओं का अतिक्रमण है।

5. अमृतकुण्डलिनी और योनिरूप शक्ति

सहस्रार में स्थित शक्ति को यहाँ "योनिरूपाममृतकुण्डलिनी" कहा गया है। मूलाधार की कुण्डलिनी अग्निमयी है। सहस्रार की कुण्डलिनी सोममयी है। एक अग्नि है। दूसरी अमृत है। एक शक्ति का अवरोह है। दूसरी शक्ति का आरोह है।

6. अग्नि और सोम का मन्थन

ग्रन्थ का सबसे गूढ़ वाक्य है— **अमृतानलकुण्डलिन्योः मिथो मथनसंभूतारुणामृतसारैः।** अर्थात् अग्निकुण्डलिनी और अमृतकुण्डलिनी के परस्पर संयोग से अरुण अमृत उत्पन्न होता है। श्रीविद्या में इसे कहा जाता है— (अ) रजः और शुक्र का दिव्य मिलन, (आ) शिव-शक्ति समरसता, (इ) कामकला, (ई) महाभोग एवं (उ) चिदानन्दरूपअमृत। "अरुण" शब्द विशेष रूप से श्रीललिता त्रिपुरसुन्दरी की ओर संकेत करता है, क्योंकि देवी का वर्ण अरुण माना गया है।

7. स्मारं मारं

यहाँ "स्मार" और "मार" कामराज एवं कामबीज के रहस्य की ओर संकेत करते हैं। श्रीविद्या परम्परा में यह— कामेश्वर -कामेश्वरी कामकला के अद्वैत संयोग का सूचक है। यह बाह्य काम नहीं, बल्कि 'कामस्य कामः' अर्थात् समस्त सृष्टि को उत्पन्न करने वाली मूल इच्छाशक्ति है।

8. आत्माभिषेक

अन्त में साधक उस अरुण-अमृत से 'आत्मानं सिञ्चेत्' — अपने सम्पूर्ण अस्तित्व का अभिषेक करता है। यहाँ अभिषेक का अर्थ है— 1. देह का देवता में रूपान्तरण, 2. जीव का शिव में विलय, 3. अहं का विसर्जन, 4. पराचैतन्य का अनुभव।

श्रीविद्या की दृष्टि से-इस सम्पूर्ण परान्यास में साधक तीन त्रिकोणों का अनुभव करता है— मूलाधार का अग्नित्रिकोण — कुण्डलिनी। हृदयस्थ कामकला त्रिकोण — शक्ति का विस्तार। सहस्रार का चन्द्रत्रिकोण — पराशक्ति। जब ये तीनों एक हो जाते हैं, तब श्रीचक्र का सम्पूर्ण रहस्य साधक के शरीर में प्रकट हो जाता है। अतः यह परान्यास वास्तव में देह को श्रीचक्रमय बनाने की योग-क्रिया है, जिसमें अग्नि (कुण्डलिनी) और सोम (अमृत) के संयोग से उत्पन्न अरुणानन्द ही त्रिपुरसुन्दरी का साक्षात् अनुभव बन जाता है।।। यह है परा न्यासः।

अथ पश्यन्तीन्यासः

शिरश्शिखाग्रं त्रिकोणं प्रकाशात्मं (त्मकं) विभाव्य तस्य वामरेखायां ऐं ह्रीं श्रीं वामायै (नमः)। ऐं ह्रीं श्रीं ज्येष्ठायै ३ रोद्र्यै नमः इति न्यस्त्वा, तस्य पूर्वरेखायां ३ अम्बिकायै0 ३ अकारात्मिकायै0 इच्छायै0 ३ ज्ञानायै0 ३ क्रियायै नमः। इति न्यस्त्वा, तस्य दक्षिणरेखायां ऐं ह्रीं श्रीं शान्त्यै हकारात्मिकायै0 ३ अहन्तात्मिकायै नमः इति न्यसेत्। *इति पश्यन्तीन्यासः।।*

अब पश्यन्ती-न्यास का विधान कहा जाता है। साधक अपने सिर की शिखा-प्रदेश में एक प्रकाशमय त्रिकोण का ध्यान करे। उस त्रिकोण की बायीं रेखा में— ऐं ह्रीं श्रीं वामायै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं ज्येष्ठायै नमः। ऐं ह्रीं श्रीं रौद्र्यै नमः। इस प्रकार न्यास करे। फिर उसकी पूर्व (सामने की) रेखा में— ऐं ह्रीं श्रीं अम्बिकायै नमः। अकारात्मिकायै नमः। इच्छाशक्त्यै नमः। ज्ञानशक्त्यै नमः। क्रियाशक्त्यै नमः। इस प्रकार न्यास करे। फिर उसकी दक्षिण रेखा में— ऐं ह्रीं श्रीं शान्त्यै नमः। हकारात्मिकायै नमः। अहन्तात्मिकायै नमः। इस प्रकार न्यास करे। यही पश्यन्ती-न्यास है।

शाक्त-तान्त्रिक विवेचन

यह न्यास केवल देवताओं के नामों का शरीर पर आरोपण नहीं है, बल्कि वाक् की पश्यन्ती अवस्था का आन्तरिक जागरण है। श्रीविद्या में वाक् की चार अवस्थाएँ मानी गई हैं— परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी। इनमें पश्यन्ती वह स्थिति है जहाँ शब्द अभी उच्चरित नहीं हुआ है, किन्तु चेतना में एक अखण्ड ज्योति-रूप भाव के रूप में विद्यमान है।

1. शिखास्थ त्रिकोण

शिखा में प्रकाशात्मक त्रिकोण का ध्यान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। त्रिकोण यहाँ केवल ज्यामितीय आकृति नहीं है। यह है— इच्छा, ज्ञान, क्रियाशक्तियों का मूल योनिचक्र। पश्यन्ती अवस्था में सम्पूर्ण वर्णमाला अभी भेदरहित है; वह केवल शक्ति के त्रिकोण रूप में विद्यमान रहती है। अतः यहाँ त्रिकोण मातृकाओं की अव्यक्त गर्भावस्था है।

2. वामा और ज्येष्ठा

त्रिकोण की बायीं रेखा पर वामा और ज्येष्ठा का न्यास किया जाता है। त्रिक एवं श्रीविद्या परम्परा में— वामा = सृष्टि की प्रथम स्पन्दशक्ति ज्येष्ठा = भेद-बोध या ज्ञान का प्रथम उदय। ये दोनों शक्तियाँ उस अवस्था को सूचित करती हैं जहाँ परम शिव अपनी स्वातन्त्र्यशक्ति द्वारा स्वयं को देखने लगता है। यही "पश्यन्ती" का शाब्दिक अर्थ भी है— "जो देखती है।" अर्थात् चेतना स्वयं को देखना प्रारम्भ करती है।

3. अम्बिका और त्रिशक्ति

पूर्वरेखा पर अम्बिका तथा इच्छा-ज्ञान-क्रिया शक्तियों का न्यास है। अम्बिका यहाँ सम्पूर्ण मातृका-चक्र की जननी है। अकारात्मिका का उल्लेख विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। तन्त्रों में— अकारः शिवः-समस्त वर्णों का मूल अकार है। अतः यहाँ अकारात्मिका अम्बिका का अर्थ है— सभी ध्वनियों की आद्य सम्भावना। इसके बाद इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्तियाँ आती हैं। यह वही क्रम है जिसमें— पहले संकल्प उत्पन्न होता है। फिर उसका ज्ञानात्मक रूप बनता है। फिर उसकी अभिव्यक्ति होती है। पश्यन्ती अवस्था इन तीनों का एकीकृत बीजरूप है।

4. शान्ति, हकार और अहन्ता

दक्षिणरेखा में शान्ति, हकारात्मिका और अहन्तात्मिका का न्यास है। शान्ति— यह सामान्य मानसिक शान्ति नहीं है। यह वह अवस्था है जहाँ सभी वर्ण पुनः अपने मूल में विलीन रहते हैं। यह शब्द की अव्यक्त विश्रान्ति है। हकारात्मिका— यदि अकार शिव का आदिबिन्दु है तो हकार वर्णमाला की पूर्णता का द्योतक है। अकार से हकार तक सम्पूर्ण मातृका का विस्तार है। अतः यहाँ हकारात्मिका सम्पूर्ण शब्द-ब्रह्म की पूर्णता को सूचित करती है। अहन्तात्मिका— काश्मीर शैव तथा श्रीविद्या दोनों में "अहम्" अत्यन्त गूढ़ तत्त्व है। यह लौकिक अहंकार नहीं है। यह है— परमेश्वरी की आत्म-विमर्श शक्ति। जब चिति स्वयं को जानती है— "अहम्।" तभी सृष्टि सम्भव होती है। अतः पश्यन्ती अवस्था में शब्द का मूल रूप वास्तव में "अहं-विमर्श" ही है। नाद और वाक् के सन्दर्भ में परा अवस्था में शब्द पूर्णतः अव्यक्त होता है। पश्यन्ती अवस्था में वही शब्द प्रकाश और विमर्श के प्रथम स्पन्द के रूप में प्रकट होता है। यहाँ— अभी ध्वनि नहीं है, अक्षर नहीं हैं, भाषा नहीं है, किन्तु सम्पूर्ण भाषा का बीज विद्यमान है। इसी कारण पश्यन्ती को "दृश्य शब्द" अथवा "ज्योतिर्मय नाद" कहा गया है। योगी यहाँ शब्द को सुनता नहीं, बल्कि देखता है।

श्रीविद्या की दृष्टि से यह सम्पूर्ण न्यास वास्तव में कामकलात्रिकोण का सूक्ष्म ध्यान है। त्रिकोण की तीन रेखाएँ— वामा, ज्येष्ठा, अम्बिका तथा इच्छा, ज्ञान, क्रिया और शान्ति-अहं-विमर्श। इन सबका समन्वय करके साधक अपने शिखास्थ सहस्रार में स्थित पश्यन्ती वाक् का जागरण करता है। इस प्रकार यह न्यास साधक को बाह्य उच्चारित मन्त्र (वैखरी) से उठाकर मन्त्र की सूक्ष्म, ज्योतिर्मयी, स्पन्दरूप अवस्था में प्रवेश कराता है, जहाँ सम्पूर्ण वर्णमाला अभी देवी की चेतना में अव्यक्त बीजरूप से स्थित रहती है। यही पश्यन्ती-वाक् का तान्त्रिक रहस्य है

अथ मध्यमान्यासः

ऐं ह्रीं श्रीं अकथात्मने सविकृतनादाय नमः। ऐं श्रीं श्रीं अकारात्मने शून्यनादाय नमः। ३ बिन्दुद्वयात्मने स्पर्शनादाय नमः। षट्कोणरेखात्मने नाथनादाय नमः। ३ अर्धचन्द्रात्मने ध्वनिनादाय नमः। वृत्तात्मने बिन्दुनादाय नमः। ३ एकारात्मने शक्तिनादाय नमः। ३ बिन्दुद्वयात्मने बीजनादाय नमः। ३ हंसरूपात्मने अक्षरनादाय नमः। ब्रह्मरन्ध्रे ललाटे भ्रूमध्ये आस्ये कण्ठे हृदये नाभौ स्वाधिष्ठाने आधारे च यथाक्रमं न्यसेत्। तारत्रयं सर्वत्र मन्त्रादौ योज्यम्। *इति मध्यमान्यासः।*

यह मध्यमान्यास श्रीविद्या-क्रम का अत्यन्त गूढ़ न्यास है। इसमें मध्यमा-वाक् की नौ अवस्थाओं का साधक के शरीर में आरोपण किया जाता है। यहाँ वर्ण, नाद, शक्ति और चैतन्य के क्रमिक अवतरण का ध्यान कराया गया है। ऐं ह्रीं श्रीं अकथात्मने सविकृतनादाय नमः। — जो "अकथ" (वर्णनातीत) स्वरूप है और विकृत (प्रकट) नाद के कारणरूप हैं, उन्हें नमस्कार।

ऐं ह्रीं श्रीं अकारात्मने शून्यनादाय नमः। — जो अकारस्वरूप तथा शून्यनादरूप हैं, उन्हें नमस्कार।
ऐं ह्रीं श्रीं बिन्दुद्वयात्मने स्पर्शनादाय नमः।— जो द्विबिन्दुस्वरूप तथा स्पर्शनादस्वरूप हैं, उन्हें नमस्कार।
ऐं ह्रीं श्रीं षट्कोणरेखात्मने नाथनादाय नमः।— जो षट्कोणरूप तथा नाथ-नादस्वरूप हैं, उन्हें नमस्कार।
ऐं ह्रीं श्रीं अर्धचन्द्रात्मने ध्वनिनादाय नमः।— जो अर्धचन्द्रस्वरूप तथा ध्वनिनादस्वरूप हैं, उन्हें नमस्कार।
ऐं ह्रीं श्रीं वृत्तात्मने बिन्दुनादाय नमः। — जो वृत्तरूप तथा बिन्दुनादस्वरूप हैं, उन्हें नमस्कार।
ऐं ह्रीं श्रीं एकारात्मने शक्तिनादाय नमः। — जो एकारस्वरूप तथा शक्तिनादस्वरूप हैं, उन्हें नमस्कार।
ऐं ह्रीं श्रीं बिन्दुद्वयात्मने बीजनादाय नमः। — जो द्विबिन्दुस्वरूप तथा बीजनादस्वरूप हैं, उन्हें नमस्कार।
ऐं ह्रीं श्रीं हंसरूपात्मने अक्षरनादाय नमः। — जो हंस स्वरूप तथा अक्षरनादस्वरूप हैं, उन्हें नमस्कार।

इनका क्रमशः ललाट, भ्रूमध्य, मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि, स्वाधिष्ठान और मूलाधार में न्यास करे। प्रत्येक मन्त्र के आरम्भ में तारत्रय (ऐं ह्रीं श्रीं) का प्रयोग किया जाए। यही मध्यमान्यास है।

शाक्त तान्त्रिक विवेचन

यह न्यास मध्यमा वाक् का न्यास है। परा-न्यास में जहाँ वाणी पूर्णतः अव्यक्त थी, वहीं यहाँ वह नादमयी चेतना के रूप में व्यक्त होने लगती है। यह परा और वैखरी के बीच की मध्य अवस्था है। श्रीविद्या में सम्पूर्ण सृष्टि का विकास इस प्रकार माना जाता है— परा → पश्यन्ती → मध्यमा → वैखरी। मध्यमा वह अवस्था है जहाँ शब्द अभी बाहर नहीं निकला है, किन्तु उसका आन्तरिक स्वरूप स्पष्ट होने लगता है।

1. अकथात्मा — अविकृतनाद

"अकथ" वह है जो किसी भाषा में व्यक्त नहीं किया जा सकता। वही पराशक्ति जब सृष्टि की ओर उन्मुख होती है तो नाद में प्रथम स्पन्द उत्पन्न होता है। इसे "अविकृत नाद" कहा गया है।

2. अकार — शून्यनाद

अकार समस्त वर्णों का मूल है। यहाँ वह महाशून्य में स्थित अनाहत नाद का प्रतीक है। यह वह अवस्था है जहाँ अभी शब्द नहीं, केवल चेतन स्पन्द है।

3. द्विबिन्दु — स्पर्शनाद

दो बिन्दु शिव और शक्ति का द्योतक हैं। उनके परस्पर स्पर्श से कम्पन उत्पन्न होता है, जिसे स्पर्शनाद कहा गया है। यहीं से सृष्टि का प्रवाह प्रारम्भ होता है।

4. षट्कोण — नाथनाद

षट्कोण ऊर्ध्वमुख त्रिकोण (शक्ति) और अधोमुख त्रिकोण (शिव) का ऐक्य है। इस मिलन से उत्पन्न दिव्य अनाहत नाद "नाथनाद" कहलाता है।

5. अर्धचन्द्र — ध्वनिनाद

अर्धचन्द्र नाद की सूक्ष्म धारा है। यहाँ चेतना ध्वनि बनने की दिशा में अग्रसर होती है, परन्तु अभी स्थूल शब्द नहीं बनी है।

6. वृत्त — बिन्दुनाद

वृत्त पूर्णता का प्रतीक है। यहाँ समस्त नाद पुनः बिन्दु में संकुचित होकर सम्पूर्ण वर्णमाला का बीज बन जाता है।

7. एकार — शक्तिनाद

श्रीविद्या में ए (एकार) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह योनि, इच्छा-शक्ति तथा सृजन-शक्ति का प्रतीक है। यहाँ नाद स्वयं शक्ति बन जाता है।

8. द्विबिन्दु — बीजनाद

अब नाद बीजमन्त्रों का रूप लेने लगता है। समस्त बीज— ऐं, ह्रीं, श्रीं, क्लीं आदि— इसी अवस्था से प्रकट होते हैं।

9. हंस रूप — अक्षरनाद

यहाँ नाद पूर्ण अक्षररूप ग्रहण करता है। सम्पूर्ण वर्णमाला उसी अक्षरनाद से प्रकट होती है। यही आगे चलकर वैखरी वाणी बनती है। श्रीविद्या के सन्दर्भ में— इस न्यास का रहस्य यह है कि मानव शरीर ही श्रीचक्र है। ललाट से मूलाधार तक स्थापित ये नौ नाद, श्रीचक्र के आन्तरिक आवरणों की भाँति चेतना की क्रमिक अभिव्यक्तियाँ हैं। साधक अनुभव करता है कि उसके भीतर की वाणी कोई व्यक्तिगत शक्ति नहीं, बल्कि स्वयं त्रिपुरसुन्दरी की वाक्शक्ति है। इस प्रकार मध्यमान्यास यह है कि शब्द केवल उच्चारित ध्वनि नहीं है; वह पराशक्ति के स्पन्द का क्रमिक अवतरण है। जब साधक इस न्यास का अभ्यास करता है, तब उसका जप केवल मुख से नहीं होता, बल्कि नादमयी मध्यमा वाक् से प्रवाहित होकर अन्ततः देवी की चैतन्यशक्ति में विलीन होने लगता है। यही इस न्यास का गूढ़ शाक्त तात्पर्य है।

अथ वैखरीन्यासः

आधारकमलचतुर्दळेषु ऐं ह्रीं श्रीं वहसें। ३ शहसैं। ३ षहसैं। ३ सहसैं। इति न्यस्त्वा, स्वाधिष्ठानकमलषड्दलेषु ३ बहसैं। ३ भहसैं। ३ महसैं। ३ यहसैं। ३ रहसैं। ३ लहसैं। इति न्यस्त्वा (न्यसेत्)। तारत्रयं सर्वत्र योज्यम्। आधारस्वाधिष्ठानाक्षरदेवताः तपनभासुर-तनुलतावराभयकरा ध्येयाः।। अथ मणिपूरकमलदशदळेषु ऐं ह्रीं श्रीं डहसंक्लीं। ३ ढहसंक्लीं। ३ णहसंक्लीं। ३ तहसंक्लीं। ३ थहसंक्लीं। ३ दहसंक्लीं। ३ धहसंक्लीं। ३नहसंक्लीं। ३ पहसंक्लीं। ३ फहसंक्लीं। इति न्यसेत्। तारत्रयं सर्वत्र योज्यम्।

अनाहतकमलद्वादशदळेषु ऐं ह्रीं श्रीं कहसंक्लीं। ३ खहसंक्लीं। ३ गहसंक्लीं। ३ घहसंक्लीं। ३ ङहसंक्लीं। ३ चहसंक्लीं। ३ छहसंक्लीं। ३ जहसंक्लीं। ३ झहसंक्लीं। ३ ञहसंक्लीं। ३ टहसंक्लीं। ३ ठहसंक्लीं। इति न्यसेत्। तारत्त्रयं सर्वत्र योज्यम्। मणिपूरकानाहतदेवता-विलीनविद्रुमरसारुणाः पुष्पशरेक्षुशरासनाङ्का ध्येयाः ॥ विशुद्धिकमलषोडश-दळेषु ऐं ह्रीं श्रीं अहसौः। ३ आहसौः। ३ इहसौः। ३ ईहसौः। ३ उहसौः।। ३ ऊहसौः। ३ ऋहसौः। ३ ॠहसौः। ३ ऌहसौः। ३ ॡहसौः। ३ एहसौः। ३ ऐहसौः। ३ ओहसौः। ३ औहसौः। ३ अंहसौः। ३ अःहसौः। इति विन्यस्य आज्ञाकमलदलद्वये ऐं ह्रीं श्रीं हहसौः। ३ क्षहसौः। इति विन्यसेत्। तारत्रयं सर्वत्र योज्यम्। विशुद्ध्याज्ञाक्षरदेवताः स्फटिकमयपाश्चालिकासंभिन्नाः पुष्पमयबाणारोपित-रसाल-चाप-सृणि-पाश-कलित-पाणिपल्लवा ध्येयाः। *इति वैखरीन्यासः।*

यह वैखरी-न्यास श्रीविद्या के नादक्रम का चौथा और अंतिम सोपान है। परा, पश्यन्ती और मध्यमा में जो शक्ति सूक्ष्म रूप में स्थित थी, वही यहाँ वैखरी वाणी के रूप में वर्णमाला और चक्रों में प्रकट होती है। इसलिए यह न्यास सम्पूर्ण मातृका-शक्ति का देहमय प्रतिष्ठापन है।

हिन्दी अनुवाद

अब वैखरी-न्यास का विधान— आधार (मूलाधार) के चार दलों में क्रमशः— ऐं ह्रीं श्रीं वंहसैं, शंहसैं, षंहसैं, संहसैं। इन मन्त्रों का न्यास करे। फिर स्वाधिष्ठान के छह दलों में— बहसें, भहसैं, महरौं, यहसैं, रहसैं, लहसैं— इनका न्यास करे। प्रत्येक मन्त्र के पूर्व 'ऐं ह्रीं श्रीं' (तारत्रय) अवश्य लगाया जाए। मूलाधार और स्वाधिष्ठान के अक्षर-देवताओं का ध्यान इस प्रकार करे कि वे सूर्य के समान प्रकाशमान, दिव्य देहयुक्त तथा वर और अभय-मुद्रा धारण करने वाले हैं। फिर मणिपूर के दस दलों में— डहसंक्लीं, ढहसंक्लीं, णहसंक्लीं, तहसंक्लीं, थहसंक्लीं, दहसंक्लीं, धहसंक्लीं, नहसंक्लीं, पहसंक्लीं, फहसंक्लीं इनका न्यास करे। अनाहत के बारह दलों में— कहसंक्लीं, खहसंक्लीं, गहसंक्लीं, घहसंक्लीं, ङहसंक्लीं, चहसंक्लीं, छहसंक्लीं, जहसंक्लीं, झहसंक्लीं, ञहसंक्लीं, टहसंक्लीं, ठहसंक्लीं इनका न्यास करे। यहाँ भी प्रत्येक मन्त्र के साथ 'ऐं ह्रीं श्रीं' लगाया जाए। मणिपूर और अनाहत की अक्षर-देवियों का ध्यान पिघले हुए प्रवाल (मूँगे) के समान अरुण वर्ण वाली, हाथों में पुष्पबाण और इक्षुधनुष धारण किए हुए करना चाहिए।

इसके बाद विशुद्धि के सोलह दलों में— अहसौः, आहसौः, इहसौः, ईहसौः, उहसौः, ऊहसौः, ऋहसौः, ॠहसौः, ऌहसौः, ॡहसौः, एहसौः, ऐहसौः, ओहसौः, औहसौः, अंहसौः, अःहसौः इनका न्यास करे। फिर आज्ञाचक्र के दो दलों में— हहसौः, क्षहसौः इनका न्यास करे। प्रत्येक मन्त्र में 'ऐं ह्रीं श्रीं' पूर्व में जोड़ा जाए। विशुद्धि और आज्ञा की अक्षर-देवियों का ध्यान स्फटिक के समान निर्मल, हाथों में पुष्पबाण, इक्षुधनुष, अंकुश और पाश धारण किए हुए करना चाहिए।

शक्तितन्त्र के अनुसार विवेचन

यह न्यास केवल वर्णों का उच्चारण नहीं है, बल्कि परावाक् के स्थूल जगत् में अवतरण का रहस्य है।

1. वैखरी — शक्ति का स्थूल स्वरूप

तन्त्र में वाणी के चार स्तर माने गए हैं— परा — अव्यक्त शक्ति, पश्यन्ती — इच्छाशक्ति, मध्यमा — ज्ञानशक्ति, वैखरी — क्रियाशक्ति। यहाँ देवी शब्द बनकर बोलती हैं। सम्पूर्ण वर्णमाला देवी का शरीर बन जाती है।

2. चक्रों में वर्णों का रहस्य

मूलाधार से आज्ञा तक कुल 50 मातृका-वर्ण प्रतिष्ठित हैं। मूलाधार — 4, स्वाधिष्ठान — 6, मणिपूर — 10, अनाहत — 12, विशुद्धि — 16, आज्ञा — 2

$$4 + 6 + 10 + 12 + 16 + 2 = 50$$

ये पचास वर्ण ही मातृका-शक्ति हैं। सम्पूर्ण सृष्टि इन्हीं अक्षरों से बनी है।

3. तीन भिन्न बीजों का रहस्य

इस न्यास में तीन प्रकार की समाप्तियाँ आती हैं— हसैं। मूलाधार-स्वाधिष्ठान में शक्ति सुप्त एवं जागरणशील है। मणिपूर-अनाहत में शक्ति सृजन, प्रेम और विस्तार करती है। विशुद्धि-आज्ञा में शक्ति वाणी से पुनः शिव में लीन होने लगती है।

4. देवी के वर्ण बदलते क्यों हैं?

प्रत्येक चक्र में देवी का ध्यान भिन्न है— मूलाधार-स्वाधिष्ठान। सूर्य के समान तेजस्विनी। वर और अभय प्रदान करने वाली। यहाँ शक्ति जीवन और स्थिरता देती है। मणिपूर-अनाहत। प्रवाल के समान लाल। पुष्पबाण और इक्षुधनुष धारण करती हैं। यह इच्छा और प्रेम की शक्ति है। विशुद्धि-आज्ञा। स्फटिक के समान निर्मल। पाश और अंकुश सहित। यहाँ वाणी पुनः चैतन्य में विलीन होने लगती है। यह शक्ति की क्रमिक शुद्धि का संकेत है।

5. श्रीविद्या की दृष्टि

श्रीविद्या में सम्पूर्ण वर्णमाला त्रिपुरसुन्दरी का शरीर है। प्रत्येक अक्षर एक देवी है। प्रत्येक दल एक शक्तिपीठ है। प्रत्येक चक्र एक चैतन्यमय मण्डल है। साधक का शरीर स्वयं श्रीचक्र बन जाता है।

6. नादयोग का रहस्य

परा में नाद अव्यक्त था। पश्यन्ती में वह प्रकाश बना। मध्यमा में वह सूक्ष्म ध्वनि बना। अब वैखरी में वही श्रव्य शब्द बन गया। इस प्रकार सम्पूर्ण वर्णमाला वास्तव में परानाद का स्थूल रूप है।

7. साधना का परम फल

इस न्यास का उद्देश्य केवल देह पर मन्त्र स्थापित करना नहीं, बल्कि यह अनुभूति कराना है कि— "मेरा शरीर मातृकाओं का मन्दिर है, मेरी वाणी स्वयं त्रिपुरसुन्दरी की वाणी है, और जो प्रत्येक अक्षर उच्चरित होता है, वही देवी की चेतन शक्ति का स्पन्दन है।" यही वैखरी-न्यास का तान्त्रिक रहस्य है—

साधक की वाणी को देवी की वाणी में रूपान्तरित करना, जिससे जप, स्तोत्र, मन्त्र और प्रत्येक शब्द दिव्य शक्ति का प्रत्यक्ष प्रकटीकरण बन जाए।

प्राणाग्निहोत्रसाधना--

अन्त्यशवर्गान्त्यासेवामश्रवणान्यथावसथजाते। असितावर्गचतुर्थासूक्ष्माः सत्याह्वये च सश्रोताः ॥8॥
हलयुतवर्गतृतीयौपराः सशान्तीश्च पश्चिमे वह्नौ। भृगुरेफफादिपञ्चकसद्योऽतिथिलोचनानि सभ्येऽग्नौ॥9॥
मज्जात्वग्वर्गादिकभौतिकभावाह्वयप्रतिष्ठाश्च। गार्हपत्ये जुहुयादित्युक्तं होमकर्म वर्णनाम्।।10।।

अर्थात् अन्य (क्ष), श, वर्गान्त्य वर्ण (म, न, ण, ञ, क), विसर्ग (अः), ए तथा वामश्रवण (ऊ/विशिष्ट स्वर-चिह्न) — इनका मूलाधार में स्थित 'आवसथ' नामक मध्यवर्ती अग्नि में होम किया जाता है। असिता (ल), व, प्रत्येक वर्ग के चतुर्थ वर्ण (भ, ध, ढ, झ, घ), अनुस्वार (अं), सूक्ष्म (ऌ) तथा श्रौत्र (उ अथवा निर्दिष्ट स्वर) — इनका पूर्व दिशा में स्थित 'सत्या' नामक कुण्डाग्नि में होम किया जाता है। ह, ळ, प्रत्येक वर्ग के तृतीय वर्ण (ब, द, ड, ज, ग), औ, परा तथा शान्ति (ई) — इनका पश्चिम दिशा में स्थित 'आहवनीय' अग्नि में होम किया जाता है। भृगु (स), रेफ (र), फादि-पञ्चक (फ, थ, ठ, छ, ख — ग्रन्थानुसार), सद्यः (ओ), अतिथि (ऋ) तथा लोचन (ई) — इनका उत्तर दिशा में स्थित 'सभ्य' नामक अग्नि में होम किया जाता है। मज्जा (व), त्वक् (य), प्रत्येक वर्ग के प्रथम पाँच वर्ण (प, त, ट, च, क), भौतिक (ऐ), भाव (ऋ) तथा प्रतिष्ठा (आ) — इनका दक्षिण दिशा में स्थित 'गार्हपत्य' अग्नि में होम किया जाता है। इस प्रकार इन पाँच अग्नियों में वर्णों, स्वरों, बीजों तथा तत्त्वों का आन्तरिक आहुतिरूप समर्पण ही 'होमकर्म' कहलाता है। तात्पर्य यह कि यह बाह्य अग्निहोत्र का वर्णन नहीं है, बल्कि श्रीविद्या-तन्त्र की आन्तरिक (मानस) होम-प्रक्रिया का निरूपण है। इसमें सम्पूर्ण मातृका-वर्णों, स्वरों, बीजों तथा कलाओं को शरीरस्थ पाँच अग्नियों— आवसथ, सत्या, आहवनीय, सभ्य और गार्हपत्य— में क्रमशः अर्पित किया जाता है। इस आन्तरिक होम का उद्देश्य सम्पूर्ण वर्णमयी शक्ति का चैतन्यमयी अग्नि में लय कर साधक की वाणी, प्राण और चित्त को पराशक्ति में प्रतिष्ठित करना। (*प्रपञ्चसार तन्त्र* अष्टम पटल - 8- 10)

तन्त्र में मातृका का अत्यन्त महत्त्व है। सभी यन्त्रों की पूजा में मन्त्र का के बीज बीजों का उच्चारण होता है इसी तरह वाणी की साधना के द्वारा सिद्धि प्राप्त होती है।

8 राजतिलक बंगलोज,
ममता हॉस्पीटल के सामने,
आबादनगर, बस स्टाप के पास,
बोपल, अहमदाबाद-380058
मो. 9427624516

त्रिक दर्शन में वाक् तत्त्व : स्वरूप एवं विमर्श

डॉ. रौशन सिंह

शोध सारांश

काश्मीर शैव दर्शन में इस वाक् तत्त्व की चर्चा सर्वप्रथम परमार्थ स्तर पर प्रारम्भ होती हैं वाक् का अभिप्राय है- " वक्ति स्वरूपं विमृशतीति वाक्।" जो स्वरूप का विमर्शन करती है वह वाक् है। अतः परमसत् का जो अनिवार्य स्वरूप है— प्रकाशविमर्शमयता, उसमें वाक् इसी 'विमर्श' के प्रत्यय में अनुस्यूत घटक है। काश्मीर शैव दर्शन वाक् तत्त्व को परमसत् के स्वरूप में अनुस्मृत क्यों मानता है इस प्रश्न का उत्तर ढूँढने पर उसके कई प्रयोजन मिलते हैं। प्रथम, परम्परागत दृष्टि से वाक् तत्त्व परमतत्त्व का स्वभाव ही है, तभी प्राचीन तन्त्रों में परमशिव को शब्दराशि कहा गया है। उसकी मन्त्ररूपता भी इसी वाक् तत्त्व की अनुप्राणकता को ही दर्शाती है। दूसरे, परमसत् के जिस पूर्ण स्वरूप की स्थापना वह करता है वहाँ उस पूर्णता का संवाहक वाक् तत्त्व को मानना अनिवार्य है अन्यथा किसी बाह्य निमित्त को मानने से वह पूर्णता सिद्ध कर पाना सम्भव नहीं होगा। विमर्श रूप में, जिसे कि परावाक् रूप से ही यह सम्प्रदाय सम्बोधित करता है, यह वाक् सारी अनेकता का स्रोत हैं और एक ही तत्त्व को बिना एकत्व से च्युत हुए नानात्व के आभासन में समर्थ बनाती है।

अतः हम इस शोध पत्र में देखेगे कि काश्मीर शैव दर्शन में वाक् तत्त्व की परिकल्पना को किस प्रकार विकसित किया गया है और भारतीय ज्ञान परम्परा के लिए यह किस प्रकार से महत्वपूर्ण हैं।

कूट पद

वाक् तत्त्व, विमर्श, अनुस्मृत, परा वाक्, तन्त्र-आगम।

परिचय

वाक् काश्मीर शैवदर्शन में अत्यन्त महत्वपूर्ण अवधारणा है, जिसे यहाँ सत् का स्वरूप निर्धारक तत्त्व माना गया है। यह समष्टि और व्यष्टि के प्रत्येक कण को अनुप्राणित करता है। तन्त्र-आगम पर आधारित इस दर्शन में वाक् तत्त्व को विमर्श और स्पन्द के रूप में परिभाषित किया गया है। विमर्श का अर्थ है स्वरूप का चिन्तन और वाक् तत्त्व इस विमर्श का आधार है। वाक् सत्, ज्ञेयता और अभिधेयता के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को स्पष्ट करता है और प्रकाश के आरोहण-अवरोहण की प्रक्रिया को संचालित करता है। तन्त्र-आगम में वाक् को चार अवस्थाओं परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी— में विभाजित किया गया है।

काश्मीर शैवदर्शन में वाक् की गत्यात्मकता को "स्पन्द" के रूप में देखा गया है, जो सृजन और रूपाकार देने वाली मूल ऊर्जा का प्रतिनिधित्व करता है। यह दृष्टिकोण विशेष रूप से *स्पन्दकारिका* में स्पष्ट होता है, जहाँ "स्पन्द" को चेतना (शिव) का स्वाभाविक गुण और सृजन की प्राथमिक शक्ति बताया गया है। स्पन्द केवल भौतिक कंपन नहीं, बल्कि चेतना की वह अन्तर्निहित गत्यात्मकता है, जो हर क्षण सृष्टि, स्थिरता, और पुनः लय में विलीन होने की प्रक्रिया को संचालित करती है। इसी गत्यात्मकता के माध्यम से शिव अपनी शक्ति (शक्ति) के द्वारा ब्रह्माण्ड को प्रकट करते हैं। वाक् इसी स्पन्द का एक सृजनात्मक आयाम है, जिसके माध्यम से चेतना विचार, शब्द, और रूप में व्यक्त होती है। स्पन्द और वाक् के बीच का संबंध काश्मीर शैवदर्शन में महत्वपूर्ण है। *स्पन्दकारिका* में यह स्पष्ट किया गया है कि वाक् और स्पन्द की यह प्रक्रिया सृजन के हर स्तर पर कार्य करती है। स्पन्द के बिना वाक् की गत्यात्मकता सम्भव नहीं है और वाक् के बिना स्पन्द की अभिव्यक्ति अधूरी है। यह सिद्धान्त यह भी इंगित करता है कि वाक् केवल संचार का माध्यम नहीं है, बल्कि यह ब्रह्माण्डीय सृजन का एक मौलिक तत्त्व है। वाक् चेतना और भौतिक जगत् के बीच सेतु का कार्य करती है क्योंकि यह विचार, भावना और ध्वनि के माध्यम से सृजन को गति देती है। आधुनिक सन्दर्भ में भी यह दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है। आज के वैज्ञानिक सिद्धान्त, जैसे कि क्वांटम यांत्रिकी, ऊर्जा कंपन और ध्वनि तरंगों की अवधारणाएँ, स्पन्द और वाक् के इस दार्शनिक दृष्टिकोण से मेल खाती हैं। उदाहरण के लिए, विज्ञान यह मानता है कि ब्रह्माण्ड की बुनियादी इकाई केवल स्थिर पदार्थ नहीं है बल्कि ऊर्जा के निरन्तर स्पन्दन और परस्पर क्रियाओं का परिणाम है। यह ध्वनि के माध्यम से पदार्थ और ऊर्जा के स्वरूपों को बदलने के अध्ययन (जैसे Cymatics) में देखा जा सकता है। स्पन्द और वाक् का यह सिद्धान्त, चेतना की सृजनात्मक शक्ति को समझने और इसे भौतिक और आध्यात्मिक दोनों स्तरों पर लागू करने की दिशा में एक अनूठा दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इस प्रकार वाक् और स्पन्द की यह गत्यात्मकता केवल दर्शन या आध्यात्मिकता तक सीमित नहीं है बल्कि यह ब्रह्माण्ड की संरचना, उसकी ऊर्जा और उसकी सृजनात्मक प्रक्रिया को समझने का एक व्यापक और समग्र दृष्टिकोण प्रदान करती है। यह सिद्धान्त यह दर्शाता है कि शब्द, ध्वनि और विचार केवल अभिव्यक्ति के साधन नहीं हैं बल्कि वे ब्रह्मांडीय चेतना और सृजन की आधारशिला हैं। अतः यह दर्शन वाक् को केवल भाषा के सन्दर्भ में नहीं देखता, बल्कि उसे चेतना और ब्रह्मबोध का माध्यम मानता है। यहाँ वाक् की अंतःक्रियाएँ न केवल तात्त्विक हैं, बल्कि साधना और आत्मसाक्षात्कार के मार्ग का भी निर्माण करती हैं।

वाक् सृष्टि

तन्त्र शास्त्र में शक्ति को वाक् रूप माना गया है। अतः सम्पूर्ण सृष्टि-प्रक्रिया को वाक् शक्ति का प्रस्फुरण माना गया है।[1] शक्ति को वाक् मानने का समुचित कारण है। चैतन्य में जो क्रिया अथवा शक्ति है, स्वाभाविक है कि वह विमर्श रूप अथवा चिन्तन रूप (Thinking) ही होगी।[2] शारीरिक अथवा जड़ क्रिया तो होगी नहीं। साथ ही तन्त्र शास्त्र का यह सिद्धान्त है कि विमर्श या चिन्तन भाषा अथवा वाणी में ही होगा। इसीलिये विमर्श शक्ति को वाक् शक्ति कहा जाता है और चूँकि वाणी या भाषा प्रथमतः ध्वनि रूप (phonetical) है इसलिये उसे नाद या नाद शक्ति भी कहा जाता है।

वाक् या शब्द शक्ति से जगत् की उत्पत्ति का सिद्धान्त वैयाकरणों ने विशेष रूप से प्रतिपादित किया है। भर्तृहरि ने अपने *वाक्यपदीय* में शब्द को ही ब्रह्म मान कर शब्द ब्रह्म से ही सृष्टि रचना मानी। भर्तृहरि का स्पष्ट प्रभाव काश्मीर शैव दार्शनिकों पर दीखता है— अभिनवगुप्त तो स्थान-स्थान पर भर्तृहरि को इंगित करते हैं। वैसे सोमानन्द ने अपनी *शिवदृष्टि* मे वैयाकरणों का खण्डन किया है। सोमानन्द ने संभवतः यह मान लिया है कि वैयाकरणों की शब्द-सृष्टि चिति शक्ति से विरहित है, अतः सोमानन्द का मन्तव्य है कि शब्द शक्ति को विना चित् शक्ति से जोड़े सृष्टि संभव नहीं है। इसी कारण सोमानन्द ने वैयाकरणों को व्यंग्य में सीधा या साधु (Simpleton) कहा है। किन्तु यहाँ उल्लेखनीय है कि सोमानन्द के द्वारा किया गया खण्डन उतना ठीक नहीं है क्योंकि वैयाकरणों के विषय में सोमानन्द की अवधारणा एकपक्षीय है। वस्तुतः वैयाकरणों की शब्दशक्ति चिति शक्ति ही है। चूंकि वैयाकरणों ने व्याकरण की हो दृष्टि से विचार किया है इसलिये उनका आग्रह शब्द शक्ति पर ही होना स्वाभाविक है। उन लोगों ने स्पष्ट शब्दों में शब्द शक्ति को चिति शक्ति नहीं कहा है और इसीलिये सोमानन्द को उनके खण्डन का अवसर मिल गया। किन्तु वास्तविक बात यह है कि वैयाकरणों की शब्द शक्ति की व्याख्या ऐसी है जिससे अपने आप स्पष्ट हो जाता है कि यह चिति शक्ति ही है।

वाक् शक्ति के स्तर

अभिनवगुप्त ने *तन्त्रालोक*[3] में तथा *परात्रिंशिका विवरण*[4] में वाक शक्ति का उल्लेख किया है। वाक् शक्ति की सृष्टि क्रम से चार भूमिकायें (levels) – परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी हैं। इन शब्द-शक्तियों को ठीक से समझने के लिये यह आवश्यक है कि इन्हें चिति शक्ति के विभेदों तथा सृष्टिक्रम के विभिन्न तत्त्वों के समकक्ष रखकर समझा जाय।

इसे निम्नलिखित चार्ट को सहायता से समझा जा सकता है।

शब्द शक्ति (वाक् शक्ति)	चित्शक्ति	तत्त्व	ज्ञान
परा	चित्, आनन्द	शिव, शक्ति	अहम् (pure unity)
पश्यन्ती	इच्छा	सदाशिव	अहमिदम् (unity in difference)
मध्यमा	ज्ञान	ईश्वर	इदमहम्
वैखरी	क्रिया	सद्विद्या	अहञ्च इदञ्च

परा

जो परा वाक् भूमि है, वह जैसा कि नाम से स्पष्ट है, सृष्टि से परे (Transcendent) है। वस्तुतः शिव शक्ति रूप[5] है जो शक्ति की दृष्टि चिद् एवं आनन्द का स्तर हैं। यहाँ जगत् नहीं है। दूसरे शब्दों में यहाँ केवलशिव-शक्ति तत्त्व हैं। जिसमें जगत् रचना की इच्छा भी नहीं है। इसे अहम् (subject or unity) एवं इदम् (object or difference) की भाषा में कहेंगे कि यह केवल अहम् अथवा शुद्ध अहम्[6] की स्थिति है। यहाँ इदम् (जगत्) नहीं आया हैं। यह पूर्णाहम् या पूर्णाहन्ता की स्थिति है।[7]

सृष्टि के लिये सृष्टि से परे परा वाक् भूमि की अवधारणा इसलिये आवश्यक है कि जिस तत्त्व से सृष्टि का विकास हुआ है यह यदि स्वयं सृष्टि रूप ही हो तो वह सृष्टि का आधार किस प्रकार होगा, इसलिये उसे सृष्टि से परे (Transcendent) होना चाहिए। साथ ही उसे ऐसा परे नहीं होना चाहिए जो सृष्टि में असम्बद्ध ही हो बल्कि वह ऐसा होना चाहिए कि जो सृष्टि रूप (Immanent) भी हो सके। शिव तत्त्व ऐसा ही है। शिव तत्त्व अपने आप में पूर्ण एवं निरपेक्ष है, उसमें सृष्टि की अपेक्षा नहीं है। किन्तु उसकी यह भी खूबी है कि वह अपने स्वातन्त्र्य से जगत् रूप भी बन जाता है। दूसरे शब्दों में, तत्त्व की जो परम अवस्था है (जिसे परमशिव, पराशक्ति, परम चैतन्य अथवा परावाक् कहा जाता हैं) यह स्वयं में सृष्टि से परे है, किन्तु उसके स्वातंत्र्य से सारी सृष्टि उसी में से निकलती हैं।

पश्यन्ती

जब परावाक् भूमि में अपने स्वातन्त्र्य से लीला के लिये जगत् रचना करने की इच्छा उठती है (अथवा यों कहा जाय कि जगत् रूप बनने की इच्छा होती है) तो परा वाक् भूमि में ही उत्पन्न इस नवीन वाक् भूमि को पश्यन्ती दशा कहते हैं। पश्यन्ती दशा में जगत् या इदम् केवल इच्छा रूप में रहता है। छत्तीस तत्त्वों को दृष्टि से शुद्ध अध्वा का तत्त्व 'सदाशिव' पश्यन्ती दशा का वाचक है। पञ्च शक्तियों की दृष्टि से यह इच्छा शक्ति का स्तर है। चूँकि यहाँ जगत् केवल इच्छा रूप में ही वर्तमान है, दूसरे शब्दों में, चूँकि इदम् अहम् में ही पूर्णतया समाहित है, इसलिये यह 'अहमिदम्' की अवस्था है। यहाँ इदम् या भेद अभी स्पष्ट नहीं हुआ है, यहाँ इदम् या भेद केवल उन्मुखता की स्थिति में है। इसीलिये अभेद हो प्रधान है, भेद मात्र उन्मुख है। इसीलिए इसकी उपमा वीज के उच्छूनता (जमने के लिए फूलना) से दी गई है। उपनिषद् में ब्रह्म की 'सैक्षत एकोऽहम् बहुस्यामि' वाली अवस्था वस्तुतः पश्यन्ती दशा ही है; यहाँ ब्रह्म जगत् रूप बनने की इच्छा करता है।

मध्यमा

कोई भी कर्ता किसी कार्य का निर्माण करता है तो कार्य-रचना की प्रक्रिया में तीन स्तर आवश्यक रूप से वर्तमान होते है जिसे इच्छा, ज्ञान और क्रिया इन तीन नामों से अभिहित किया गया है। सर्वप्रथम कर्ता में कार्य-विशेष को बनाने को कर्ता के मन में इच्छा उत्पन्न होती है। यही इच्छा शक्ति का स्तर है, इसके बाद जिस कार्य की रचना करनी है, उसका पूर्ण चित्र कर्ता के मन में स्पष्ट रूप से आभासित हो जाता है। यह ज्ञान-शक्ति का स्तर है। यहाँ कार्य अभी कर्ता के मन में ही अथवा चैतन्य में ही रहता है। चूँकि यहाँ कार्य बाहरी वस्तु रूप में नहीं आया रहता है, वरन् मन में ही ज्ञान (Idea) रूप में रहता है, इसलिए इस स्तर को ज्ञान शक्ति का स्तर कहा जाता है। इसके बाद कर्ता मन में स्पष्ट हुए कार्य को बाहर वस्तु रूप में निर्माण करके रख देता है। यह क्रिया है। उदाहरण के लिये कुम्भकार को घड़ा बनाना है, सर्वप्रथम कुम्भकार के मन में घड़ा बनाने की इच्छा (इच्छा-शक्ति) उठेगी, तत्पश्चात् जैसा घड़ा बनाना है, उसकी स्पष्ट आकृति कुम्भकार के मन में आ जायेगी, तत्पश्चात् कुम्भकार घड़ा बना कर रख देगा (क्रिया-शक्ति)। यही तीनों इच्छा, ज्ञान क्रिया के तीन स्तर जो किसी भी कार्य रचना में होते हैं। शिव भी जगत् की रचना करता है तो उसमें भी ये तीनों स्तर स्वभाविक हैं। पश्यन्ती या सदाशिव अवस्था इच्छा का स्तर है, मध्यमा या ईश्वर की अवस्था ज्ञान का स्तर है तथा वैखरी या सद्विद्या क्रिया का स्तर है।

स्पष्ट है कि मध्यमा वाक् भूमि इच्छा-ज्ञान-क्रिया की स्तर त्रयी में ज्ञान का स्तर है। यहाँ जगत् इच्छा अवस्था से तो आगे आ गया रहता है किन्तु बाहर प्रकटित होने वाली क्रिया अवस्था से अभी पहले ही रहता है। इस अवस्था में जगत् शिव चैतन्य में केवल ज्ञान या विमर्श रूप में रहता है जैसे कि कुम्भकार के मन में घट की स्पष्ट आकृति आ जाती है। मध्यमा दशा तत्त्वों की दृष्टि से ईश्वर तत्त्व का परिचायक है; शक्तियों की दृष्टि से ज्ञान शक्ति का स्तर है। यहाँ जगत् भेद या इदम् पश्यन्ती की तुलना में अधिक स्पष्ट हो जाता है अथवा अधिक बहिर्गत हो जाता है, किन्तु फिर भी अहम् में ही धारित होता है, इसलिये इसे इदम् अहम् की अवस्था कहते हैं। यहाँ इदम् स्पष्ट रूप से शिव चैतन्य में आ जाता है किन्तु चैतन्य में विमर्श रूप में रहता है, वस्तु रूप में बहिर्गत नहीं होता।

वैखरी

मध्यमा अवस्था में इदम् या जगत् चैतन्य में ही ज्ञान अथवा विमर्श[8] रूप में रहता है; किन्तु उसके बाद जब जगत् या इदम् बहिर्गत होकर बाह्यभास के रूप में स्थित हो जाता है तो यह वैखरी अवस्था है। वैखरी अवस्था क्रिया-शक्ति का स्तर है।[9] तत्त्वों की दृष्टि से यह सद्विद्या की अवस्था है। चूंकि इस अवस्था में इदम् या जगत् स्पष्ट आभास रूप में अह (Self) से बाह्य हो जाता है और साथ ही अहं उसको धारण भी किये रहता है, इसलिये इसमें जो अनुभूति होती है वह 'अहश्च इदश्च' होती है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि इदम् अहम् से बाह्य आभासित होने मात्र से वह अहम् से अलग नहीं हो जाता। सद्विद्या अवस्था की यह विशेषता है कि इसमें जगत् बाहर दीखता है किन्तु यह ज्ञान रहता है कि यह मुझमें ही रहता है और मुझसे ही धारित होता है। इसकी तुलना कुछ सीमा तक जादूगर अथवा योगी के द्वारा की गयी उत्पत्ति से की जा सकती है। योगी अपने चैतन्य से ही उसको धारण किये रहता है और इस बात का उसे ध्यान रहता है। उसी प्रकार वैखरी अवस्था में अहम् से इदम् बाहर निकल कर भी अहं के द्वारा धारित रहता है और इसका ज्ञान भी रहता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी अवस्था में जो भेद है, वह वस्तुत इदम् की स्थिति को लेकर ही है। अन्तः और बाह्य की भाषा में कहें तो पश्यन्ती से वैखरी तक 'इदम् ' उसी क्रम में अधिक बाह्य होता जाता है, अर्थात् पश्यन्ती में आन्तरिक रहता है, मध्यमा में उससे अधिक बाह्य होता है और वैखरी में उससे अधिक बाह्य हो जाता है। सूक्ष्म और स्थूल की भाषा में कहें तो 'इदम्' पूर्वापर क्रम से अधिक अधिक स्थूल होता जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पश्यन्ती से वैखरी तक की यात्रा आन्तरिक से बाह्य की ओर, सूक्ष्म से स्थूल की ओर, अव्यक्त से व्यक्त की ओर, अहं से इदम् की ओर है।

परा शक्ति की सृष्टि रूप होने के इस क्रम की उपमा माता के गर्भ से शिशु उत्पन्न होने से दी जा सकती है। मां की जो अवस्था शिशु उत्पन्न होने से परे की है, अर्थात् जहाँ गर्भाधान भी नहीं हुआ है और स्त्री विना शिशु के अपने आप में है,वह परा स्थिति से तुलनीय है। जब गर्भाधान हुआ तो यह पश्यन्ती (सदाशिव, इच्छाशक्ति) स्थिति है, स्मरणीय है कि गर्भाधान में शिशु के अस्तित्व का प्रारम्भ मात्र होता है, शिशु का स्पष्ट रूप गर्भ में नहीं आया रहता। गर्भाधान के बाद जब गर्भ में ही शिशु का पूरा रूप स्पष्ट रूप से आ जाता है और अभी प्रसव नहीं हुआ रहता तो यह मध्यमा (ईश्वर और ज्ञानशक्ति) स्थिति है। इसके बाद जब

गर्भस्थित शिशु का प्रसव होकर शिशु जब माता के गर्भ से बाहर आ जाता है तो यह वैखरी (सद्विद्या और क्रिया शक्ति) स्थिति है। प्रसव के पूर्व की स्थितियों में माता को शिशु से अपने तादात्म्य का ज्ञान तो रहता ही है, प्रसव के बाद भी रहता है, अर्थात् बच्चा गर्भ से बाहर निकल जाने के बाद भी माता यह जानती है कि यह मुझसे ही बाहर निकला है और मेरा ही है। उसी प्रकार पराशक्ति वैखरी दशा में भी जगत् को अपने से बाहर निकाल कर भी, यह जानती है कि जगत् मुझसे तादात्म्य में है। इसीलिये वैखरी या सद्विद्या अवस्था तक शुद्ध अध्वा[10] माना जाता है।

वैखरी की अशुद्धावस्था में अभिव्यक्ति

परा शक्ति या चिति शक्ति का वैखरी तक जो विकास ऊपर दिखाया गया है, वहीं तक सृष्टि रुक नहीं जाती; वहाँ तक तो चिति शक्ति शुद्ध अवस्था में रहती है और जगत् या इदम् का ज्ञान शुद्ध आभास रूप में रहता है। इसके बाद माया और माया के परिणाम पञ्चकंचुक लगने से चित् शक्ति सीमित हो जाती है जिसे अणु, पशु या पुरुष कहा जाता है। अणु या पुरुष को इदम् से अभेद का ज्ञान नहीं रहता, वह यही समझता है कि जगत् मुझसे भिन्न एवं स्वतन्त्र है। दूसरे शब्दों में, जगत् स्वतन्त्र जड़ वस्तु के रूप में दीखता है जो हम सबको हो रहा है। जगत् अपने आप में स्वतन्त्र जड़ सत्ता न होते हुए भी हम उसे ऐसा समझते हैं। अद्वैत वेदान्त में इसे ही व्यवहार-दशा एवं बौद्ध दर्शन में संवित् सत्य कहते हैं। लोक व्यवहार की यह दशा वैखरी वाक् की अशुद्धावस्था है।

वाक् का तात्त्विक स्वरूप (Metaphysics of Vāk)

शुद्ध भाषा (language) की दृष्टि से विचार करें तो वहाँ भी यह स्पष्ट होगा कि हम जगत् का जो ज्ञान कर रहे हैं, वह पूर्णतया भाषा रूप (linguistic) ही है। वस्तु ज्ञान सापेक्ष है और ज्ञान शब्द सापेक्ष है। तात्पर्य यह है कि ज्ञानात्मक (Epistemological) दृष्टि से विचार करें तो यह स्पष्ट होगा कि हम जो जगत् को ग्रहण करते हैं, वह भाषा या शब्द में ही करते हैं और यही नहीं कि वस्तु का ज्ञान होने में शब्द मात्र सहायक है बल्कि ऐसा है कि हमारे पास वस्तु शब्द बन कर ही आती है अर्थात् हम जो वस्तु-ज्ञान करते हैं वह शब्द ही है। शब्द और अर्थ (वस्तु) में वस्तुत: भेद नहीं है क्योंकि हम अर्थ को ग्रहण करते हैं तो शब्द रूप में ही ग्रहण करते हैं। उदाहरण के लिये घट का जो हम ज्ञान करते हैं तो घट शब्द से ही उसे ग्रहण करते हैं। यदि हमारे पास घट शब्द न हो तो घट का ज्ञान हम क्या वह कर करेंगे। यदि यह कहा जाय कि हमारे पास घट शब्द न होने पर हम घट वस्तु को देख कर यह भले न कहें कि यह घट है किन्तु इतना तो कहेंगे कि यह एक वस्तु है; तो उत्तर यह होगा कि 'वस्तु' कह कर ग्रहण करने में भी वस्तु तो शब्द ही है। ऐसा नहीं हो सकता कि बिना किसी शब्द प्रयोग के ज्ञान हो जाय, कोई न कोई शब्द का प्रयोग करना ही पड़ेगा। दूसरे शब्दों में, जगत् ज्ञान सापेक्ष है और ज्ञान विकल्पात्मक है। विकल्प (Categories) के प्रयोग के विना ज्ञान हो ही नहीं सकता। यदि हमारे पास विकल्प या शब्द न हों तो जगत् की सत्ता शब्द निरपेक्ष हो भी तो भी हमको उसका ज्ञान कैसे होगा। इसीलिए हम हमेशा ही जगत् को विकल्प या शब्द रूप में ग्रहण करते हैं।[11] अतः जगत् को भाषा की दृष्टि से विकल्प या शब्द रूप कहा जा सकता है। इसीलिए तन्त्र का यह सिद्धान्त कि

सारा जगत् वाक् या शब्द रूप है, समीचीन ही है। उपर्युक्त आशय को उत्पल-देव ने अपनी *ई0 प्र0 कारिका* के ज्ञानाधिकार में उल्लिखित किया है एवं अभिनव गुप्त ने उसी की अपनी विमर्शिनी टीका में विस्तृत व्याख्या की है।[12]

मुख से जो शब्द हम बोलते हैं; उस भाषा या शब्द की भेद करें तो परावस्था का शब्द वह होगा जो वस्तुतः निःशब्द है। दृष्टि से अवस्था अर्थात् जहाँ शब्दों का कोई रूप अभी प्रकटित नहीं हुआ है, किन्तु जो सभी शब्दों के प्रकटन का स्रोत है। इस प्राथमिक शब्द (primordial sound) को ॐ कहा गया है। हमारे भीतर शुद्ध चिति रूप में यह ॐ विद्यमान है। यह परावाक् है। जब हम शब्द को प्रकटित करने के लिये वोलने की इच्छा करते हैं तो यह पश्यन्ती वाक् है। इसके बाद बोले जाने वाले शब्द का पूर्ण रूप हमारे मन में स्पष्ट रूप से आ जाता है[13] तो यह मध्यमा वाक् है। जब हम इसे मुख से उच्चरित (articulate sound)करते हैं तो यह वैखरी वाक् है।

वर्ण क्रम

तन्त्रों में सृष्टि तत्व को संस्कृत वर्णमाला (Sanskrit Alphabet) के रूप में दिखाने की भी एक स्पष्ट रीति है। अभिनगुप्त ने *तन्त्रालोक* के तीसरे आह्निक में इसे दर्शाया है। अ, आ, इ इत्यादि स्वर वर्ण एवं क, ख, ग इत्यादि व्यञ्जन वर्णों को सृष्टि तत्त्व के विभिन्न अंगों के रूप में माना गया है। यह स्पष्ट नहीं है कि ये वर्ण स्वयं में सृष्टि रूप माने गये हैं अथवा सृष्टि तत्त्व के प्रतीक (Symbol) माने गये हैं। तन्त्रों में जो वर्णन मिलता है, उससे तो यही लगता है कि ये वर्ण सृष्टि तत्त्व के प्रतीक रूप में नहीं लिये जा रहे हैं बल्कि इनको स्वयं तत्त्व रूप माना जा रहा है। अभिनवगुप्त के एतद् विषयक विवेचन में यद्यपि कुछ अधिक स्पष्टता आई है, फिर भी अभिनवगुप्त ने लगभग तन्त्रों की ही प्रणाली का अनुगमन किया है और यह स्पष्ट नहीं किया है कि ये वर्ण सृष्टि-तत्त्व के प्रतीक हैं।

वर्णमाला का जो प्रथम वर्ग 'अ' है, वही सर्वाधिक महत्व का है क्योंकि वर्गों की दृष्टि से वह प्रथम एवं स्वतन्त्र सत्ता है। बाकी वर्ण उसी के योग से बनते हैं और परवर्ती सभी वणों में अ' अनुस्यूत रहता है।[14] अभिनवगुप्त के अनुसार यह 'अ' वर्ण परमशिव है जो अनुत्तर है। यह निरपेक्ष है क्योंकि इसके उच्चारण में किसी अन्य वर्ण की सहायता नहीं लेनी पड़ती। बाकी स्वर वर्ण इस 'अ' की ही विभिन्न अवस्थायें हैं। दूसरे शब्दों में, अ ही दीर्घ हो के आ हो गया है, अ ही मुड़कर इ हो गया है, और फिर आगे चलकर ए, ऐ, ओ, ओ हो गया है, इत्यादि। व्यञ्जन वर्णों में भी यह विशेषता है कि विना स्वर वर्ण के उनका उच्चारण नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए 'क' का उच्चारण विना 'अ' के नहीं हो सकता। 'क' का अर्थ ही है 'क्'+'अ'।

वर्णमाला के विश्लेषण से यह भी स्पष्ट है कि स्वर वर्ण सूक्ष्म हैं तथा शुद्ध हैं; किन्तु व्यञ्जन वर्ण स्थूल हैं और मिश्र हैं। चूँकि स्वर वर्ण आदि वर्ण हैं, सूक्ष्म निरपेक्ष एवं अन्तर्यामी है, इसलिये इन्हें शुद्ध चैतन्य तत्त्व रूप माना गया है। अ से औ तक स्वर के जो विभिन्न भेद है, वे इसी चिति तत्त्व के विभिन्न अवस्था-भेद है। उदाहरण के लिये अ अनुत्तर परम शिव है और 'आ' आनन्द अथवा शक्ति है। इस प्रकार 'अ' शिव है, 'आ' शक्ति है; 'अ' चित् है, 'आ' आनन्द है; 'अ' ज्ञान है, 'आ' क्रिया है, 'अ' प्रकाश है, 'आ' विमर्श

है। आगे का जो इ वर्ण है, वह इच्छा शक्ति (सदाशिव) है। इच्छा शक्ति में भी दो स्तर-भेद किये जा सकते है- एक जन्म लेती हुई जो इ और दूसरी वर्धित या 'उच्छून' हुई जो ई है। उसी प्रकार ए और ऐ पूर्ववत् स्वर-भेद से ज्ञान शक्ति (ईश्वर) है। ओ और औ भी उसी प्रकार से क्रिया-शक्ति (सद्विद्या है)।[15] इस प्रकार अनुस्वार (.) को विन्दु कहा जाता है जिसका अर्थ है वेत्ता अथवा ज्ञाता (वेत्ता विन्दुः)। विसर्ग (:) का अर्थ है विसर्जन जर्यात् सृष्टि। अतः विन्दु शिव है और विसर्ग उसकी सृष्टि।

उपर्युक्त व्याख्या से यह भी स्पष्ट है कि स्वर सृष्टि शुद्धाध्वा है क्योंकि इसमें शुद्धाध्वा के ही स्तर के तत्त्व हैं। वर्षों की दृष्टि से भी यह सही है क्योंकि व्यंजन वाली अशुद्धता, मलावरोहिता एवं सापेक्षता से ये मुक्त हैं। व्यंजन वर्ग स्थूलसृष्टि के द्योतक है जिसमें पुरुष, प्रकृति से लेकर पञ्च महाभूत तक सारे तत्त्व निहित। व्यञ्जन स्थूल हैं और स्वर सूक्ष्म, व्यञ्जन सापेक्ष हैं और स्वर निरपेक्ष अर्थात् सृष्टि स्थूल और जड़ है, किन्तु शिव सूक्ष्म तथा चेतन रूप है। साथ ही शिव निरपेक्ष है. उसे अपने अस्तित्व के लिये किसी का सहारा लेना आवश्यक नहीं है किन्तु अस्तित्व बिना सहारे का नहीं है। व्यञ्जन बिना स्वर की सहायता से नहीं बोले जा सकते, सृष्टि तत्त्व विना शिव के अन्तर्भूत रहे टिक नहीं सकते। स्वर व्यञ्जन में छिपा हुआ है अर्थात् शिव सृष्टि में छिपा हुआ है।

वर्णमाला के अन्तिम तीन वर्ण क्ष, त्र, ज्ञ कि मिश्र वर्ण हैं, इसलिये वास्तविक वर्णमाला ह पर ही खत्म होती है। इस प्रकार वर्णमाला अ से प्रारम्भ होकर ह पर समाप्त होती है। इस प्रकार सारे तत्त्व 'अ' और 'ह' (अहं) में आ गये। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जो ज्ञानी होगा, उसको ये सारे तत्व अपने भीतर यानी अहं में दिखायी देंगे। इसीलिए तान्त्रिक साधना में अहं भावना का अभ्यास बताया गया है। अहं भावना का अर्थ है अ से लेकर ह तक समस्त तत्त्वों को अपने भीतर देखना। अहं का यह विशेष अर्थ हुआ।[16] चूँकि अ से लेकर ह तक सभी वर्णों को अपने आप में अर्थात् अहं में सभी तत्त्वों की आहूति की जाती है, अर्थात् समस्त तत्त्वों को अहं के साथ अभेद कर दिया जाता है। इसलिये अहं याग है। अ से लेकर ह तक सभी तत्त्व मुझमें है, इसका ज्ञान होना साधना का सर्वोच्च स्तर (शाम्भवोपाय) है। अहं ही पूर्णाहंता है। यह अहं व्यष्टिपरक नहीं है, यही समष्टि है, पूर्णाहन्ता है। यही शिवरूपता है।

निष्कर्ष

काश्मीर शैवदर्शन में वाक् तत्त्व का अध्ययन न केवल धार्मिक और दार्शनिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह समाज में चेतना और आत्मबोध की दिशा में सकारात्मक परिवर्तन लाने का साधन भी बन सकता है। इस शोध के माध्यम से हम यह समझ सकते हैं कि वाक्, केवल शब्दों और ध्वनियों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक सशक्त ऊर्जा है जो मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है। आधुनिक समय में जब मानसिक तनाव, आत्मसंदेह और आंतरिक असंतुलन जैसी समस्याएँ व्यापक हो गई हैं तब इन समस्याओं से निपटने के लिए वाक् तत्त्व का उपयोग विशेष रूप से मन्त्र जाप या ध्यान के माध्यम से किया जा सकता है। जब हम उच्चारित शब्दों या ध्वनियों के माध्यम से ध्यान करते हैं, तो यह मानसिक संतुलन को फिर से स्थापित करने में मदद करता है, जिससे आत्म-विश्वास, मानसिक शांति और आन्तरिक संतुलन की प्राप्ति होती है। समाज के लिए इसका महत्त्व इस सन्दर्भ में भी है कि वाक् तत्त्व की समझ और

सही उपयोग से व्यक्ति अपने आत्मबोध को विकसित कर सकता है, मानसिक शान्ति प्राप्त कर सकता है और आध्यात्मिक उन्नति की दिशा में अग्रसर हो सकता है। इसके अलावा, यह मानव चेतना के गहरे रहस्यों को उजागर कर समाज को एक उच्चतर मानसिक और आध्यात्मिक अवस्था की ओर प्रेरित कर सकता है। इस प्रकार, यह शोध न केवल काश्मीर शैवदर्शन के दार्शनिक सिद्धान्तों को पुनः परिभाषित करता है, बल्कि यह भारतीय दार्शनिक परम्पराओं के महत्व को भी वैश्विक स्तर पर उजागर करता है। यह अध्ययन एक मौलिक योगदान के रूप में ज्ञान के नए क्षेत्रों की ओर मार्गदर्शन करेगा, जिससे भविष्य में इसके और भी विस्तृत अनुसंधान की संभावनाएँ खुलेंगी।

सन्दर्भ

1. *परात्रिंशिका विवरण*, पृ04
2. *तत्वार्थक* 136 से आगे।
3. *परात्रिंशिका विवरण* पृ03 से 15 तक.
4. चिन्मात्रमेव देवी च। सा परा परमेश्वरी ॥– *तन्त्रालोक*, 6।180
5. ``निराशंसात्पूर्णादमिति पुराभानवति यद "– *ई0 प्र0 वि0,*
6. बीज वाला दृष्टान्त उपनिषद् में भी पाया जाता है।
7. अभिनवगुप्त ने *परात्रिंशिका विवरण* में शिव की अनुत्तरता (पर रूपता)पर विस्तृत आग्रह किया है।– 10 वि. वि.1 श्लोक की टीका है।
8. इस विषय का विवेचन पहले ही स्वातन्त्र्यवाद के प्रसंग में किया जा चुका है।
9. चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परा वाक् स्वरसोदिता। — *ई0 प्र0 वि0*, 1-203
10. वैखरीनाम क्रियाज्ञानमयी भवति मध्यमा वाक्।इच्छापुनः पश्यन्ती सूक्ष्मासमरसावृत्तिः ॥– *महार्थमञ्जरी*, 49, पृ0105
11. न सोस्ति प्रत्ययो लोके... - भर्तृहरि; *वक्यपदीय*
12. *ई0 प्र0*, ज्ञानाधिकार
13. माधवाचार्य, सं. शर्मा, उमाशंकर (1964). *सर्वदर्शनसंग्रह*, वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन.
14. मिश्र, कैलाश पति (1996). *भारतीय भाषा दर्शन*, वाराणसी : कला प्रकाशन.
15. Chatterjee, J. C. (1914). *Kashmir Shaivism,* Shrinagar: Kashmir Granthavali.
16. Pandey, K. C. (1963). *Abhinavagupta: An Historical and Philosophical Study*, Varanasi : Chowkhamba Series.

(Postdoctoral Fellow)
Center for Sanskrit and Indic studies,
Jawaharlal Nehru University (JNU), New Delhi-110067
Mo-9151991588
roushansingh03@gmail.com

स्तवचिन्तामणि स्तोत्र में प्रतिपादित भक्ति का स्वरूप

डॉ. रमेश चन्द्र नैलवाल

शोध सार

कश्मीर मण्डल का वैशिष्ट्य है कि विविध सम्प्रदाय के उपास्य भिन्न होते हुए भी इनमें भक्ति स्वरूप, उपासना पद्धति एवं सिद्धान्तों में समरूपता है। उपास्य परमतत्त्व के कार्यों, गुणों एवं दार्शनिक सिद्धान्त प्रायः समान ही है। इसका ही कारण है कि कश्मीर में सम्प्रदायों की विविधता होने के कारण भी किसी भी प्रकार का विरोध प्राप्त नही होता है। दशम शताब्दी के उत्तरार्ध में कविभट्ट नारायण के द्वारा रचित *'स्तवचिन्तामणि'* स्तोत्र भक्ति रस से समन्वित है। इसमें शिवस्तुति से युक्त 120 पद्य हैं, जो शैव दर्शन के मूल सिद्धान्तों पर आश्रित है। भक्ति का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए भक्त कहता है कि – भगवद्भक्ति के द्वारा भक्त के अज्ञान मल से आवृत्त नेत्र निर्मल हो जाते हैं, तथा वही नेत्र निर्मल होकर ज्ञान नेत्र हो जाते हैं। भक्त कवि के लिए परमशिव ही भ्राता, मित्र, स्वामी और सब कुछ होता है, क्योंकि वही भवार्णव से पार कराने में सक्षम है। भट्टनारायण के अनुसार भगवद्भक्ति दीपशिखा के समान है, भक्तों का स्वामी परमशिव कोई भी विपत्ति को नष्ट करने में तथा कोई भी सम्पत्ति देने में समर्थ है। इस प्रकार इस स्तोत्र में नवधा भक्ति का बहुधा उल्लेख प्राप्त होती है।

कूटशब्द

कश्मीर, परमशिव, भक्ति, समावेश, उपास्य, उपासक, सम्प्रदाय, स्तोत्र।

प्रस्तावना

काश्मीरस्थ भक्तिसाहित्य न केवल साहित्यिक दृष्टि से अपितु भक्तिदर्शन के दृष्टि से विपुल और सुविस्तृत है। आठवीं से अठारहवीं शताब्दी तक संस्कृतभाषा एवं काश्मीरी भाषा में अनेकों स्तोत्र प्राप्त होते हैं। भक्तिदर्शन में साधक स्वाभीष्ट परमेश्वर पर आश्रित होकर उनके ऐश्वर्य इत्यादि का भी वर्णन एवं अपने अभीष्ट की याचना करता है। अत प्रायः साधकों की प्रवृत्ति के भेद से भी काश्मीरस्थ स्तोत्रों में उपास्य की दृष्टि से विविध देवों की स्तुति प्राप्त होती है। काश्मीर क्षेत्र में दशम शताब्दी तक शैव, शाक्त, वैष्णव, आदित्य, बौद्ध और जैन इत्यादि सम्प्रदायों प्रचलित थे, तथापि स्तोत्रों में उपास्य देवताओं में शिव, शक्ति, आदित्य और पराशक्ति की स्तुति प्रमुखता से प्राप्त होता है। इन सभी स्तोत्रों में शिव, त्रिपुरा, पार्वती, सूर्य, परावाक्, शिवशक्ति के अद्वैत और पराशक्ति, परा, अपरा और परापरा देवी, परमशिव और परमतत्त्व की स्तुति प्राप्त होती है। तथा उपास्य की विविधता होते हुए भी सिद्धान्तों में एकरूपता दृष्टिगत होती है।

मुख्य विषय वस्तु

कश्मीर मण्डल में विविध सम्प्रदायों में भक्ति का अत्यन्त महत्त्व है। प्रायः सभी सम्प्रदायों में भक्तिपरक रचनाएं प्राप्त होती है। जिनमें भक्ति के विविध तत्त्वों का समावेश प्राप्त होता है। इन सभी सम्प्रदायों में उपास्य, उपासक एवं उपासना की भिन्नता होते हुए भी अनेक तत्त्वों में समरूपता प्राप्त होती है। समावेशमयी भक्ति का स्वरूप सभी सम्प्रदायों में प्राप्त होता है; इस पराद्वय भक्ति की चरम प्रतिष्ठा की पृष्ठभूमि में समावेश की अवधारणा ही है। अभिनवगुप्त कहते हैं कि भक्ति की दशा समावेशरूपिणी है। यही हमारा चरम प्राप्य है। देवस्तुति, ध्यान, पूजा, प्रणाम सब इसी के उपादान या साधन हैं। वह समावेश की अवस्था है, सम्यक् आवेशन अर्थात् चिदात्मबोध और कर्तृता की प्रधानतया स्थिति, जिसमें प्रमेयता या परिमित प्रमातृता का गुणीभाव हो जाता है। अभिनवगुप्त का विशेष आग्रह इस बात को बताने में है कि शास्त्र का भी आधारभूत प्रयोजन यही प्रतिपादित करना है कि सम्यगावेश ही ज्ञान का मौलिक रूप है; और वही प्रधान है। शास्त्र की प्रमाणादि विषयक अन्य प्रवृत्ति उसकी अनुषङ्ग है – सम्यगावेशनं हि तत्र प्रधानम्, तत्सिद्धये तूपदेशान्तराणि। (*ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिणी*) जब चित् ज्ञान का कर्तृत्वरूप स्वातन्त्र्य का प्राधान्य एवं पारतन्त्र्य का अप्राधान्य होता है, तो वह समावेशावस्था कही जाती है –

मुख्यत्वं कर्तृतायाश्च बोधस्य च चिदात्मनः।
शून्यादौ तद्गुणे ज्ञानं तत्समावेशलक्षणम्॥

आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार जिस अवस्था में जीव अपने पारतन्त्र्य को गौण करके शिवतत्त्व में समावेश प्राप्त करता है; वह अवस्था समावेश की अवस्था होती है। इस विषय में अभिनवगुप्त *ईश्वरप्रत्यभिज्ञा* में कहते हैं कि – यत्पुनः कर्तृताया मुख्यत्वं तन्त्रान्तरीयकश्च शून्यादेर्गुणाभावः यच्च तत् कर्तृताया मुख्यत्वम् अस्मद् गौणता, इदमेव ज्ञानमज्ञानात्मककमलप्रतिपक्षत्वात्। तदेतन्मुख्यं समावेशस्य लक्षणम्।

आचार्य अभिनवगुप्त भक्ति को व्याख्यायित करते हुए उसे पूर्ण समर्पण का अपर पर्याय कहते हैं, जो एकात्म्यप्राप्ति रूप ही है। उस भक्ति का फल दास्यभाव है। जिसका अभिप्राय अभिनवगुप्त ने परमेश्वर रूप स्वातन्त्र्य की पात्रता कहा है। यह प्रह्वीभाव ही भक्ति का सार है – 'दीयते अस्मै स्वामिना सर्वं यथाभिलषितम् इति दासः। तस्य भावः इत्यनेन परमेश्वररूपस्वातन्त्र्यपात्रता उक्ता'।[1] काश्मीरस्थ दर्शनों में भक्ति का इतना अप्रतिम स्थान है कि भक्त की कोटि साक्षात् शिव की है। साक्षात् शिवभाव को प्राप्त होकर जो व्यक्ति परमशिव की उपासना करता है; वह अवश्य ही अपने स्वरूप की प्रत्यभिज्ञा करता है। स्तोत्रकार कहते हैं कि –

शिवो भूत्वा यजेतेति भक्तो भूत्वा इति कथ्यति।
त्वमेव हि वपुः सारं भक्तैरद्वयशोधितम्।।[2]
न योगो न तपो नार्चाक्रमः कोऽपि प्रणीयते।
अमाये शिवमार्गेऽस्मिन् भक्तिरेका प्रशस्यते॥[3]

काश्मीरस्थ स्तोत्रों का महत्त्व इससे भी पता चलता है कि इन सभी प्रमुख स्तोत्रों पर प्रसिद्ध शैवाचार्यों ने टीका एवं व्याख्याएँ लिखी हैं। भट्टनारायण रचित *स्तवचिन्तामणि*, उत्पल की *शिवस्तोत्रावली* एवं आचार्य साम्ब द्वारा रचित *साम्बपञ्चाशिका* पर प्रसिद्ध शैवाचार्य क्षेमराज ने विवृति नामक टीकाएँ लिखी है। इस प्रकार अन्यत्र भी सभी स्तोत्रों पर टीकाएं प्राप्त होती हैं। जिससे काश्मीर स्तोत्र साहित्य का महत्त्व भी ज्ञात होता है। इन सभी स्तोत्रों में भक्ति एवं दर्शन का अद्भुत समन्वय प्राप्त होता है। प्रायः त्रिक दर्शन में दास्यात्मक भक्ति को ही स्वीकार किया गया है। इसका अर्थ है कि यहाँ उपासक अपने को दास अथवा ईश्वर सेवक मानता है; तथा भगवान् को स्वामी। विविध स्तोत्रों में परमतत्त्व अथवा परमशिव के अनेक विशेषणों एवं अभिधानों का उल्लेख प्राप्त होता है। शाक्त आगम के स्तोत्रों में मातृभाव से दास्यात्मिका भक्ति को ही सङ्केतित किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि भक्ति का मूल तत्त्व प्रायः दास्य भाव ही है।

स्तवचिन्तामणि में भक्ति के विविध आयाम

प्रायः भट्टनारायण कृत *स्तवचिन्तामणि* ग्रन्थ को सर्वप्राचीन स्तोत्र माना जाता है। इसमें परमशिव के दार्शनिक पक्ष को विशेष रूप से प्रदर्शित किया गया है। प्रस्तुत स्तोत्र में प्रायः भक्तितत्त्व को प्रदर्शित करते हुए शैवदर्शन के पराद्वैत सिद्धान्त का पूर्णतः प्रतिपादन है। इसमें तीन त्रितयों का समन्वय है – पर (शिव एवं शक्ति का सामरस्य), अपर (शिव, शक्ति एवं नर) तथा परापर (परा, अपरा और परापरा – इन तीन देवताओं का समन्वय)। अत एव शैव दर्शन त्रिक दर्शन कहलाता है। प्रकाश एवं विमर्शमय शिव अनन्यनिरपेक्ष है, इसे भक्ति के माध्यम से कहते हैं कि – प्रकाशविमर्शमय होने के कारण अन्यनिरपेक्ष एवम् सर्वसामर्थ्यशाली परमशिव को (शूलिन्) को नमस्कार है।[4] यही पूर्णावस्था की अवस्था पूर्णानन्द कही जाती है। इस परमशिव को आनन्दसागर भी कहा गया है। भट्टनारायण कहते हैं कि संसार में जो कुछ आनन्द का अंश दिखाई देता है, वह शिव के पूर्णानन्द का ही एक अंश है –

त्रैलोक्ये यो यावानान्दः कश्चिदीक्ष्यते।
स बिन्दुर्यस्थ तं वन्दे देवमानन्दसागरम्॥[5]

शैव दर्शन में 'आनन्दशक्ति' को ही परम शिव का स्वतन्त्र स्वभाव कहा गया है। इसको ही 'विमर्श' नामक संज्ञा से बताया गया है। यह शक्ति 'शक्तितत्व' में क्रियाशील रहती है। वास्तव में शिव–शक्ति अथवा प्रकाश–विमर्श अथवा चित्–आनन्द' के परस्पर अवियोज्य अवस्था को ही पूर्णानन्द कहा गया है। पूर्णानन्द का यह स्वरूप शिव की अवस्था में ही प्राप्त होता है; अन्यत्र नहीं।[6]

उस परमशिव की प्राप्ति हेतु विविध स्तोत्रों में विविध उपायों की चर्चा प्राप्त होती है। भट्टनारायण इस हेतु भक्ति के साधन के रूप में अनेक साधनों का उल्लेख करते हैं। उनके अनुसार भगवन्नाम के अनवरत चिन्तन,[7] मन्त्र जप,[8] अर्चन,[9] परमतत्त्व के ध्यान,[10] भगवद्स्मरण, स्तुति, शास्त्राध्ययन, चित्रदर्शन, कीर्तन, सेवा इत्यादि विविध उपायों द्वारा परमशिव स्वरूप को प्राप्त किया जा सकता है। प्रायः ये सभी साधन भक्ति

की विविध परम्पराओं में प्राप्त साधनों के समान ही हैं। इन साधनों को बाह्योपासना एवं मानसिक उपासना की दृष्टि से दो भागों में बांटा जा सकता है। इस भक्ति को विविध अर्थों में विशिष्ट कहा जा सकता है।

शैव दर्शन में ज्ञान एवं भक्ति का भी अद्भुत सामञ्जस्य प्राप्त होता है। यहाँ भक्ति केवल उपासना और मुक्ति का ही सामञ्जस्य ही उत्पन्न नहीं करती, अपितु भक्ति के साधनों का भी यहाँ अद्भुत समन्वय प्राप्त होता है। यह भक्ति ज्ञान-संबलित भक्ति कही जाती है। अभिनवगुप्त कहते हैं कि – 'ज्ञानी हि भक्तः' इति ज्ञानित्वमेव नाम हि भक्तिः।[11] अर्थात् ज्ञानी ही भक्तपद को प्राप्त करता है। भक्त की वह अवस्था परमावस्था है। उस परमावस्था के लिए भट्टनारायण कहते है कि उस परमेश्वर की जय हो जो चित्त का प्रशमन करने वाली पश्यन्तीवाक् के द्वारा दिखाई जाती हुई (परावागात्मक) आनन्दरूपी अपनी महिमा का उन्मीलन करता है।[12] जिस प्रकार भक्ति की अन्य परम्पराओं में ईश्वररूपी प्रणवतत्त्व 'ॐ' को उपास्य रूप में प्रतिपादित किया गया है; उसी प्रकार काश्मीरस्थ स्तोत्रों में भी हमें उसका उसी रूप में विवरण प्राप्त होता है। भट्टनारायण कहते हैं कि हम उस स्थाणु (परमशिव) को प्रणाम करते हैं जो प्रणव (ॐ) की सर्वोत्कृष्ट अर्धमात्रा से भी अतिसूक्ष्म है, तथा ब्रह्माण्ड से भी महत्तर है तथा प्रकृति के गुणों से रहित होना जिसका चित्प्रकाशात्मक धर्म है।[13]

परमशिव की उस परमावस्था के प्रति कौन भक्त दास्यभाव से युक्त नहीं होगा। इस विषय में भट्टनारायण कहते हैं कि हे भव! आपके तात्त्विक स्वरूप का ध्यान करने के लिए पुनर्जन्मरूपी त्रास का नाश करने वाले आपके प्रति कौन भक्ति को पसन्द नहीं करता होगा;[14] अर्थात् सभी करते होंगे। मन्त्र उपासना का भी शैवभक्ति साहित्य में अत्यन्त महत्त्व है। स्तवचिन्तामणिकार कहते हैं कि वे महात्मा धन्य हैं जिन्होंने 'नमो नमः शिवाय' इस मन्त्र द्वारा शक्ति प्राप्त कर शिव की आनन्दमयी विभूति का आस्वादन आरम्भ कर दिया है।[15] ब्रह्म इत्यादि देव भी अन्य कथा संवादों का त्याग कर, आनन्द से तन्मय होकर 'ॐ नमः शिवाय' इस प्रस्तुत मन्त्र का मनन करते हैं।[16] भट्टनारायण का मत है कि भक्ति रस से उद्दीपित चेतना वाले धन्य भक्तगण साक्षात् भगवान् धूर्जटि का अनुसरण करते हैं।[17]

भक्ति का माहात्म्य प्रतिपादित करते हुए परमतत्त्व की प्राप्ति के लिए भट्टनारायण कहते हैं कि हे भक्तों! कौन सा वह मार्ग (शारीरिक क्रिया-कलाप) है जिससे तुम प्राप्त नहीं किये जा सकते हो, कौन सी वाणी है जिससे आपका नामोच्चारण असम्भव हो, कौन सा ध्यान है जिसमें तुम्हारी भावना नहीं होती एवं कौन सी चेष्टा है जिसके तुम विषय नहीं हो।[18] स्तोत्रकार यहाँ बाह्य पूजा का सङ्केत कर रहे हैं। परमशिव के लिए भक्ति अत्यन्त विशिष्ट है; इस हेतु स्तवचिन्तामणिकार कहते हैं कि भक्ति के कारण मनुष्यों की मुक्ति के लिए प्रवृत्त होने वाले, स्मरण करने से रक्षा करने वाले तथा स्तुति करने संसार से निवृत्ति के लिए श्रेय प्रदान करने वाले, हे परमशिव आपको प्रणाम है।[19] यहाँ भक्ति का वैशिष्ट्य प्रतिपादित किया गया है कि भक्ति के कारण परमशिव विविध फलों को प्रदान करते हैं।

भक्तकवि भक्ति का वैशिष्ट्य बताते हुए ही भक्ति को रस सञ्ज्ञा से अभिहित करते हैं। उनके अनुसार परमशिव के भक्ति के रसामृत के अतिरिक्त असङ्ख्य गुणों में विस्तृत आनन्द अन्यत्र नहीं दिखाई पड़ता है;[20] अर्थात् भक्ति परम रसामृत है। परमशिव की यह भक्ति कल्पवृक्ष के समान सर्वविध फलों को प्रदान करने वाली है। अतः भक्तिरूपी मार्ग द्वारा अणिमा इत्यादि गुणों की प्राप्ति, नित्य ऐश्वर्य तथा सांसारिक भवबन्धनों का विनाश सम्भव है।[21] भक्त अपने स्वामी से अधिकारपूर्वक कहता है कि हे अष्टमूर्ति भगवन्! क्या हमें किसी एक भी मूर्ति में शाश्वत स्थान नहीं प्रदान करोगे? ऐसा आप नहीं कर सकते। अर्थात् सन्तुष्ट होने पर तो आप सबकुछ प्रदान करेंगे ही।[22] यहाँ भक्त सगुणभक्ति के माध्यम से भक्ति को व्याख्यायित किया गया है। भक्ति के स्तर पर परमतत्त्व के नामस्मरण अथवा नाम का कितना महत्त्व है; इसको प्रतिपादित करते हुए भट्टनारायण कहते हैं कि लौकिक दृष्टि से वस्तुओं का परमार्थ उनका स्वकीय अर्थक्रियाकारित्व है। परन्तु हे ईश! तुम्हारा तो ना ही मोक्ष तक की सिद्धि प्रदान कर देता है।[23] श्रवण भक्ति को प्रस्तुत करते हुए भक्त कहता है कि जिनके नाम श्रवण मात्र से महात्माजन रोमाञ्च के अङ्कुरों से पुलकित हो उठते हैं, तथा जिनकी परामर्शपरक स्तुतियाँ सर्वोत्कृष्ट है, वे परमेश्वर सर्वथा स्तुत्य हैं।[24]

भक्ति के साधना रूप में मन्त्रशक्ति का उल्लेख करते हुए भक्तकवि कहता है कि आप मन्त्र (मन्त्रमयीदेवता-वाचक शक्ति) हो। आप मन्त्रणीय (प्रतिपाद्य देवता-वाच्य शक्ति) हो। तुमसे भिन्न दूसरा मन्त्री (साधक) कहाँ हो सकता है? इस प्रकार के तुम, हे प्रभो! मुझे वह मन्त्र (मन्त्र-मन्त्रणीय-मन्त्री रूपात्मक) दीजिए; जिससे आपके मन्त्र के साथ मैं एकाकार हो जाऊँ।[25] भक्ति स्तोत्रों में परमशिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों स्वरूप प्राप्त होते हैं। भक्त कहता है कि गुणों से आपसे बढ़कर कौन है? आपसे बढ़कर निर्गुणी है। इन दो उक्तियों से हे नाथ! क्या हम तुम्हारी स्तुति करते हैं अथवा निन्दा? यह हमें ज्ञात नहीं।[26]

नाम स्मरण अथवा कीर्तन नामक भक्ति साधन का वर्णन करते हुए भक्तकवि कहता है कि हे जगत्स्वामिन् परमानन्दमय रूप तुम्हारे नामोच्चारण मात्र से तुम्हारा जो अनुग्रहात्मक फल है उसका आस्वादन कराने में अथवा उसे प्रदान कर देने में तुम्हारे अतिरिक्त और कौन समर्थ है?[27] भक्ति की प्राप्ति हेतु ही भक्त के सभी क्रियाकलाप होते हैं, भक्तकवि कहता है कि आपकी भक्ति ही प्राप्त करने के लिए मैं सभी प्रकार से तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ।[28] भक्ति कृत्रिम होते हुए भी अकृत्रिम फल देती है;[29] अर्थात् सभी प्रकार के लौकिक एवं भौतिक विषयों को प्रदान करने की योग्यता भक्तितत्त्व में है।

निष्कर्ष

भट्टनारायण कृत *स्तवचिन्तामणि* नामक स्तोत्र ग्रन्थ में भक्तकवि ने दार्शनिक विषयों के साथ भक्ति के सभी तत्त्वों का भी वर्णन किया है। प्रस्तुत स्तोत्रों में परमतत्त्व के सगुण एवं निर्गुण को वर्णन करते हुए भक्ति के सभी साधनों का प्रयोग प्राप्त होता है। जिनमें दास्य भक्ति, अर्चन भक्ति, नामस्मरण, बाह्यपूजारूप भक्ति इत्यादि स्वरूप प्राप्त होते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अभिनगुप्त, *अभिनवस्तोत्रावलीः* (सं0- शशिशेखर चतुर्वेदी). वाराणसी : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 2011.

भट्टनारायण, *स्तवचिन्तामणि* (व्या. रामशङ्कर सिंह). दिल्ली : परिमल प्रकाशन; 2002.

अभिनवगुप्त, *ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी* (सं0- सुब्रह्मण्यम अय्यर और कान्तिचन्द्र पाण्डेय). दिल्ली : मोतीलाल बनारसी दास, 1986.

अभिनवगुप्त, *गीतार्थसङ्ग्रह* (व्या. विजयपालशास्त्री, सं. ईश्वरभारद्वाज), नवदेहली : सत्यम पब्लिशिंग हाउस, 2005.

सन्दर्भ

1. *ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिणी*, 1/1/1 पृ 13
2. *शिवस्तोत्रावली* 1/14
3. *शिवस्तोत्रावली* 1/14
4. अनन्यापेक्षसामर्थ्यशालिने शूलिने नमः॥ *स्तवचिन्तामणि* 1/8
5. *स्तवचिन्तामणि* 61
6. तथा ते सौन्दर्यं परम शिवदृङ्नात्र विषयः। कथङ्कारः ब्रूम सकल निगमगोचरगुणे॥ *आनन्दलहरी* 2
7. *स्तवचिन्तामणि* 19
8. *स्तवचिन्तामणि* 20
9. *स्तवचिन्तामणि* 22
10. *स्तवचिन्तामणि* 36
11. *ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिणी* 1
12. सुगिरा चित्तहारिण्या पश्यन्त्या दृश्यमानया। जयत्युल्लासितानन्दमहिमा परमेश्वरः॥ *स्तवचिन्तामणि* 1
13. प्रणवोर्ध्वार्धमात्रातोऽप्यणवे महते पुनः। ब्रह्माण्डादपि नैर्गुण्यगुणाय स्थाणवे नमः॥ *स्तवचिन्तामणि* 7
14. भगवन्भव भावत्कं भावं भावयितुं रुचिः। पुनर्भवभयोच्छेददक्षा कस्मै न रोचते॥ *स्तवचिन्तामणि14*
15. नमो नमः शिवायेति मन्त्रसामर्थ्यमाश्रिताः। श्लाघ्यास्ते शाम्भवीं भूतिमुपभोक्तुं य उद्यताः॥ *स्तवचिन्तामणि20*
16. अहो ब्रह्मादयो धन्या ये विमुक्तान्यसंकथम्। नमो नमः शिवायेति जपन्त्याह्लादविह्वलाः॥ *स्तवचिन्तामणि* 62
17. ...इति भक्तिरसाध्माता धन्या धावन्ति धूर्जिटम्॥ *स्तवचिन्तामणि68*
18. कः पन्थाः येन न प्राप्यः का च वाङ् नोच्यसे यया। किं ध्यानं येन न ध्येयः किं वा किं नासि यत्प्रभो॥ *स्तवचिन्तामणि* 21
19. नमो भक्त्या नृणां मुक्त्यै भवते भव तेऽवते। स्मृत्या नुत्या च ददते शम्भवे शं भवेऽभवे॥ *स्तवचिन्तामणि* 30
20. यावदुत्तरमास्वादसहस्रगुणविस्तरः। तवद्भक्तिरसपीयूषान्नाथ नान्यत्र दृश्यते। *स्तवचिन्तामणि* 50
21. अणिमादिगुणावाप्तिः सदैश्वर्यं भवक्षयः। अमी भव भवद्भक्तिकल्पपादपपल्लवाः॥ *स्तवचिन्तामणि55*
22. अष्टमूर्ते किमेकस्यामपि मूर्तौ न नह: स्थितिम्। शाश्वतीं कुरुषे यद्वा तुष्टः सर्वं करिष्यसि॥ *स्तवचिन्तामणि78*

23. वस्तुतत्त्वं पदार्थानां प्रायेणार्थक्रियाकरम्। भवतस्त्वीश नामापिमोक्षपर्यन्तसिद्धिदम्॥ *स्तवचिन्तामणि79*
24. जयन्ति गीतयो यासां स गेयः परमेश्वरः। यन्नाम्नापि महात्मानः कीर्यन्ते पुलकाङ्कुरैः॥ *स्तवचिन्तामणि* 82
25. मन्त्रोऽसि मन्त्रणीयोऽसि मन्त्री त्वत्तः कुतोऽपरः। स मह्यं देहि तं मन्त्रं त्वन्मन्त्रः स्यां यथा प्रभो॥ *स्तवचिन्तामणि84*
26. को गुणैरधिकस्त्वत्तः त्वत्तः को निर्गुणोऽधिकः। इति नाथ नमः त्वां किं निन्दामो न मन्महे॥ *स्तवचिन्तामणि97*
27. कीर्तनेऽप्यमृतौघस्य यत्प्रसत्तेः फलं तव। तत्पातुमपि कोऽन्योऽलं किमु दातुं जगत्पते॥ *स्तवचिन्तामणि98*
28. निःशेषाप्रार्थनीयार्थसार्थसिद्धिनिधानतः। त्वत्तत्वद्भक्तिमेवासुं प्रार्थये नाथ सर्वथा॥ *स्तवचिन्तामणि99*
29. कृत्रिमापि भवद्भक्तिरकृत्रिमफलोदया॥ *स्तवचिन्तामणि108*

सहायकाचार्य,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय,
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
रायबरेली रोड, लखनऊ
पिन-226025
मो. 9773683877

गोरक्ष पद्धति में प्राणायाम एवं आसन का वैशिष्ट्य

प्रो. गोपाल प्रसाद शर्मा

चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।[1] मनुष्य का चित्त चञ्चल है। योग के छः अंग हठयोग के ग्रन्थ *'गोरक्षपद्धति'* में इस प्रकार कहे गये हैं-आसन, प्राणसंरोध, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि।[2] जितने जीव जन्तु इस संसार में हैं, उतने ही आसन कहे गये हैं, इन सभी के पृथक्-पृथक् भेद केवल भगवान् शिव ही जानते हैं।[3] चौरासी लाख आसनों के भेद मनुष्य नहीं जान सकेंगे, अतः भगवान् शिव ने इन सभी आसनों में से केवल चौरासी आसन ही सर्वसाधारण के लिये प्रगट किये हैं।[4] इन चौरासी आसनों में भी बहु विस्तार होने से योगियों के लिये मुख्यतः दो आसन अर्थात् सिद्धासन तथा पद्मासन माने गये हैं।[5]

योग के षडङ्गों में यदि सूक्ष्मता से देखा जाय तो दो ही अंग मुख्यतः हमारे सम्मुख उपस्थित हैं। प्रथम है आसन तथा द्वितीय है प्राणायाम। प्राणायाम की संख्या वृद्धि होने पर उनकी संज्ञा क्रमशः प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि होती है। बासठ प्राणायाम को प्रत्याहार, बासठ प्रत्याहार को धारणा कहा जाता है।[6] इसी प्रकार 1,728 प्राणायाम को ध्यान तथा 20,736 प्राणायाम को समाधि कहते हैं।[7]

प्राणायाम का स्वरूप इस प्रकार कहा गया है—

पूरक में 12, कुम्भक में 16 तथा रेचक में प्रणव की 10 मात्रा यह कनिष्ठ प्राणायाम हैं।[8] इससे द्विगुण अर्थात् पूरक 24, कुम्भक 32 तथा रेचक 20 यह मध्यम एवं पूरक 36, कुम्भक 48 तथा रेचक 30 यह उत्तम प्राणायाम है।[9]

आसन तथा प्राणायामादि से योगियों के रोग तथा पाप नष्ट हो जाते हैं, सभी शुभाशुभ कर्मों का क्षय होने से समाधि में मोक्ष का लाभ होता है।[10] प्राणायाम में प्रणव का जप होता है, यह प्रणव ईश्वर का वाचक है।[11] *शुक्लयजुःप्रातिशाख्य* में प्रणव की तीन मात्रा कही गयी है तथा यह उदात्त होता है।[12]

जिन योगियों को मेद तथा श्लेष्मा का आधिक्य हो उन्हें धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि तथा कपालभाति ये यौगिक षट्कर्म करके ही प्राणायाम में प्रवृत्त होना चाहिये क्योंकि यदि मेद तथा श्लेष्मा का आधिक्य होगा तो अत्यन्त कष्ट से भी अभ्यास दृढ़ नहीं होता जबकि अन्य योगी प्राणायाम से ही अपना अभ्यास दृढ़ कर सकते हैं।[13]

संक्षेप में कहा जाय तो योग का परम लक्ष्य ब्रह्म में लीन होना ही है। ब्रह्म में क्षणमात्र मन लीन हो जाय तो इसका भी परमफल कहा गया है।[14]

आज योग का अपप्रयोग हो रहा है। योग का उद्देश्य जहाँ सांसारिक धर्मों से मन हटाकर उसे ईश्वर में लीन करना है, आज तद्विपरीत आचरण हो रहा है। हम कैसे दीर्घजीवी हों, इस उद्देश्य को लेकर तथा कैसे सांसारिक कार्यों में हमारा चित्त स्थिर हो इसी उद्देश्य को लेकर मानवमात्र योग में प्रवृत्त हो रहा है। आज की योग-क्रियाओं को तथाकथित योग से अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता। इसका स्वरूप हम विशेषतः 21 जून अन्तरराष्ट्रिय-योग-दिवस में देख सकते हैं, जब योग के नाम पर व्यायाम-विशेष करते हुए मनुष्यों को देखा जा सकता है। ऐसे व्यायामविशेष देखने में आते हैं, जिनका योग के ग्रन्थों में कहीं उल्लेख नहीं है। साथ ही यह भी बताया जाता है कि इस क्रिया से शरीर का अमुक अंग पुष्ट रहेगा अथवा मस्तिष्क की एकाग्रता बनी रहेगी।

ऐसे उद्घोषकों ने यदि कोई अनुसंधान करके इस प्रकार की घोषणा की हो तो मुझे पता नहीं परन्तु ऐसी क्रियाओं को योग से जोड़कर निश्चित ही 'योग' पद का अपप्रयोग ही किया जा रहा है। समाज में एक या एक से अधिक अक्षरों को शब्द कहना अधिक प्रचलित है परन्तु मैं एक से अधिक शब्दों के सार्थक समूह को पद कहना अधिक पसन्द करता हूँ। आज की भाग-दौड़ की जिन्दगी में कैसे व्यक्ति व्यापार तथा कार्यालयादि के कार्याधिक्य को अधिक कुशलता से तथा एकाग्र होकर यथाविधि सम्पन्न कर सके, इसी उद्देश्य से योग किया जा रहा है, जो कि विवक्षित नहीं है।

योग में प्रवृत्त होने के लिये दस यम तथा दस नियम कहे गये हैं[15], जो कि आज योग में प्रवृत्त होने वालों के लिये नहीं बताये जाते हैं। योगग्रन्थों में गुरु की महिमा कही गयी है।[16] गुरु संप्रदायविद् ही होना चाहिये। भारतीय-अध्ययन-परम्परा में सभी आर्षग्रन्थों को गुरुमुखोच्चारणानूच्चारण पद्धति से ही पढ़ने की परिपाटी रही है।[17]

योग-गुरु के बिना प्राणायाम साधक की हानि भी कर सकते हैं।[18] प्राणायाम का यथाविधि अनुष्ठान करने पर सभी रोगों का नाश होता है, जबकि यथाविधि अनुष्ठान के अभाव में अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।[19] अतः पूरक, कुम्भक तथा रेचक में गुरूपदिष्ट मार्ग का अवलम्बन करना चाहिये।[20] आहार-विहार का भी योग-मार्ग में ध्यान आवश्यक है।[21] वास्तविक प्राणायाम तो केवल कुम्भक ही है, जिससे साधक को तीनों लोकों में कुछ भी अलभ्य नहीं रह जाता है।[22]

भारतीय ज्ञान परम्परा में तीन मार्ग (ज्ञान, भक्ति तथा कर्म) उपदिष्ट हैं। इन तीनों में से किसी का भी अवलम्बन करके मनुष्य अभीष्ट सिद्धि कर सकता है। यदि कर्म-मार्ग की ओर मनुष्य प्रवृत्त होता है, तो उसे यथाविधि ही कर्म करना चाहिये। जैसे प्राणायाम के अभ्यासी के लिये क्षीर तथा आज्य भोजन प्रशस्त है।[23] विपरीतकरणी (शीर्षासन) से मन्दाग्नि रोग का नाश होकर जठराग्नि प्रबल होती है, यदि साधक अल्पाहार करेगा तो जठराग्नि ही देह को हानि पहुँचायेगी।[24]

आज योग का उपदेश करने वाले शिक्षक इन तथ्यों को नहीं बताते। अतः योग-साधना से लाभ की अपेक्षा हानि होने की संभावना अधिक होती है। प्राणायाम वायु का रोधन ही है, अतः इसमें सावधानी आवश्यक है।[25] अतएव ब्रह्मा, योगी आदि वायु के निरोध में तत्पर रहते हैं।[26] ॐकार के ऋषि ब्रह्मा हैं।[27]

योग का अनुष्ठान एकान्त में प्रशस्त है।[28] योगी को मिताहारी होना चाहिये।[29] *श्रीमद्भगवद्गीता* के सत्रहवें अध्याय में भी सात्त्विक, राजसिक तथा तामसिक भोजन की चर्चा आयी है।[30]

सीत्कारी प्राणायाम का बड़ा महत्त्व बताया गया है।[31] आज के दूषित पर्यावरण में विशेषतः दिल्ली जैसे महानगर में इससे कितना लाभ होगा, इस तथ्य को चिकित्सक ही अच्छी तरह बता सकते हैं। यही बात शीतली कुम्भक[32] के विषय में भी चरितार्थ होती है। प्राणायाम का मन के साथ अनन्य सम्बन्ध है।[33] अतः प्राणायाम का इतना महत्त्व है। सन्ध्या-वन्दन तथा प्रत्येक धर्म-कार्य में आचमन, प्राणायाम कहा गया है। गृह-कार्य के लिये प्राणायाम का उपदेश तथा राजकार्यादि के लिये भी प्राणायाम का उपदेश नहीं किया गया है। आज के समय में किसी भी कार्य में एकाग्रता लाने के लिये आसन तथा प्राणायाम किया जाता है। किसी आयुर्वेद के ग्रन्थ में किसी रोग-नाश के लिये आसन-प्राणायामादि का विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता है।

योगग्रन्थों में केवल योगी के रोगों के शमन हेतु इनका विधान किया गया है, जो कि अभीष्ट है। ऐसा नहीं है कि हमारे आयुर्वेद के ऋषि तथा आचार्य योग की रोगनाशक क्षमता से अपरिचित रहे होंगे तथापि उन्होंने विशेष अनुपानादि के साथ औषधि का ही विधान बताया। औषधि के द्वारा ही रोग-शमन का उपदेश दिया। जब औषधियों से रोगशमन न हो तो वैद्यों में एक श्लोक प्रसिद्ध है, जिसका जप करने को वे बताते हैं-

अच्युतानन्दगोविन्दनामस्मरणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।

यह हमारे ऋषियों तथा आचार्यों की सूक्ष्म दृष्टि थी, जिससे उन्होंने कभी योगोपदिष्ट मार्ग से रोगशमन की बात नहीं की। वे योग का परम लक्ष्य जानते थे। आज के समाज को योग के परम लक्ष्य को जानने की आवश्यकता है तथा मात्र योग कहकर जो विधिहीन योग का स्वरूप प्रचारित कर दिया गया है उससे सम्भावित लाभ-हानि पर भी विचार करना आवश्यक है साथ ही योग के अनुबन्ध-चतुष्टय की भी जानकारी अत्यावश्यक है।

सन्दर्भ-सूची

1. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः- *पातञ्जलयोगसूत्र*-1.2
2. आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा। ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि वदन्ति षट्।।
   -*गोरक्षपद्धति*, प्रथम शतक, श्लोक-7
3. आसनानि च तावन्ति यावन्तो जीवजन्तवः। एतेषामखिलान् भेदान् विजानाति महेश्वरः।।
   -वहीं, श्लोक-8
4. चतुरशीतिलक्षाणामेकैकं समुदाहृतम्। ततः शिवेन पीठानां षोडशोनं शतं कृतम्।।
   -वहीं, श्लोक-1
5. आसनेभ्यः समस्तेभ्यो द्वयमेतदुदाहृतम्। एकं सिद्धासनं प्रोक्तं द्वितीयं कमलासनम्।। -वहीं, श्लोक-10

6. प्राणायामद्विषट्केन प्रत्याहारः प्रकीर्तितः। प्रत्याहारद्विषट्केन ज्ञायते धारणा शुभा।।
–वहीं, द्वितीय शतक, श्लोक–13
7. धारणा द्वादश प्रोक्ता ध्यानाद्ध्यानविशारदैः। ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते।। –वहीं, श्लोक–14
8. पूरके द्वादशी कुर्यात् कुम्भके षोडशी भवेत्। रेचके दश ॐकाराः प्राणायामः स उच्यते।। –वहीं, श्लोक–4
9. प्रथमे द्वादशी मात्रा मध्यमे द्विगुणा मता। उत्तमे त्रिगुणा प्रोक्ता प्राणायामस्य निर्णयः।। –वहीं, श्लोक–5
10. आसनेन रुजो हन्ति प्राणायामेन पातकम्। विकारं मानसो योगी प्रत्याहारेण मुञ्चति।।
धारणाभिमतो धैर्यं ध्यानाच्चैतन्यमद्भुतम्। समाधौ मोक्षमाप्नोति त्यक्त्वा कर्म शुभाशुभम्।।
–वहीं, श्लोक–11–12
11. तस्य वाचकः प्रणवः– *पातञ्जलयोगसूत्र*–1.27
12. प्रणवश्च–शुक्लयजुः प्रातिशाख्य–2.51
13. मेदः श्लेष्माधिकं पूर्वं षट्कर्माणि समाचरेत्। अन्यस्तु नाचरेत्तानि दोषाणां समभावतः।।
– *गोरक्षपद्धति*, द्वितीय शतक, श्लोक–1
14. स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिलं दत्ता द्विजेभ्यो धरा, यज्ञानां च हुतं सहस्रमयुतं देवाश्च संपूजिताः।
स्वाद्वन्नेन सुतर्पिताश्च पितरः स्वर्गं च नीताः पुनः, यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि प्राप्नोति धैर्यं मनः।।
–वहीं, श्लोक–101
15. अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं क्षमा धृतिः। दयार्जवं मिताहारः शौचं चैव यमा दश।।
तपः संतोष आस्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम्। सिद्धान्तवाक्यश्रवणं ह्री मती च तपो हुतम्।।
नियमा दश संप्रोक्ता योगशास्त्रविशारदैः।। – *हठयोगप्रदीपिका*, प्रथम उपदेश, श्लोक–1–3
16. बद्धपद्मासनो योगी नमस्कृत्यं गुरुं शिवम्। भ्रूमध्ये दृष्टिरेकाकी प्राणायामं समभ्यसेत्।।
– *गोरक्षपद्धति*, द्वितीयशतक, श्लोक–7

तथा

ऊर्ध्वं नाभेरधस्तालोरुर्ध्वं भानुरधः शशी। करणी विपरीताख्या गुरुवाक्येन लभ्यते।।
– *हठयोगप्रदीपिका*, तृतीय उपदेश, श्लोक–79
17. भारतेऽपि भवेदेवं कर्तृस्मृत्या तु बाध्यते। वेदेऽपि तत्स्मृतिर्या तु सार्थवादनिबन्धना।।
–मीमांसाश्लोकवार्तिक, *वाक्याधिकरण*, श्लोक–367
18. यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद्वश्यः शनैः शनैः। तथैव सेवितो वायुरन्यथा हन्ति साधकम्।।
– *हठयोगप्रदीपिका*, द्वितीय उपदेश, श्लोक–15
19. प्राणायामादियुक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्। अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः।।
हिक्का श्वासश्च कासश्च शिरःकर्णाक्षिवेदनाः। भवन्ति विविधा रोगाः पवनस्य प्रकोपतः।।
–वहीं, श्लोक–16–17

20. युक्तं युक्तं त्यजेद्वायुं युक्तं युक्तं च पूरयेत्। युक्तं युक्तं च बध्नीयादेवं सिद्धिमवाप्नुयात्।। –वहीं, श्लोक–18
21. युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।। –*श्रीमद्भगवद्गीता*–6.17
22. प्राणायामोऽयमित्युक्तः स वै केवलकुम्भकः। कुम्भके केवले सिद्धे रेचपूरकवर्जिते।।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते। शक्तः केवलकुम्भेन यथेष्टं वायुधारणात्।।
–गोरक्षपद्धति द्वितीय शतक, श्लोक–3–4
23. अभ्यासकाले प्रथमे शस्तं क्षीराज्यभोजनम्। ततोऽभ्यासे दृढीभूते न तादृङ्नियमग्रहः।।
–वहीं, प्रथम शतक श्लोक–104
24. नित्यमभ्यासयुक्तस्य जठराग्निविवर्धिनी। आहारो बहुलस्तस्य सम्पाद्यः साधकस्य च।।
अल्पाहारो यदि भवेदग्निर्दहति तत्क्षणात्। अधःशिराश्चोर्ध्वपादः क्षणं स्यात्प्रथमे दिने।।
–*हठयोगप्रदीपिका*, तृतीय उपदेश, श्लोक–80–81
25. यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवं न मुञ्चति। मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायुं निरोधयेत्।।
–*गोरक्षपद्धति*, प्रथम शतक, श्लोक–91
26. अतः कालभयाद् ब्रह्मा प्राणायामपरायणः। योगिनो मुनयश्चैव ततो वायुं निरोधयेत्।। –वहीं, श्लोक–93
27. ॐकारस्य ब्रह्मा ऋषिः..... सन्ध्या–प्रकरण
28. उत्साहात्साहसाद्धैर्यात्तत्त्वज्ञानाच्च निश्चयात्। जनसंगपरित्यागात्षड्भिर्योगः प्रसिद्ध्यति।।
–*हठयोगप्रदीपिका*, प्रथम उपदेश, श्लोक–16
29. सुस्निग्धमधुराहारश्चतुर्थांशविवर्जितः। भुज्यते शिवसंप्रीत्यै मिताहारः स उच्यते।।
–वहीं, श्लोक–58 तथा
पुष्टं सुमधुरं स्निग्धं गव्यं धातुप्रपोषणम्। मनोभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत्।। –वहीं, श्लोक–63
30. *श्रीमद्भगवद्गीता*–17, 7–10
31. सीत्कां कुर्यात्तथा वक्त्रे घ्राणेनैव विजृम्भिकाम्। एवमभ्यासयोगेन कामदेवो द्वितीयकः।।
–*हठयोगप्रदीपिका*, द्वितीय उपदेश, श्लोक–54
32. जिह्वया वायुमाकृष्य पूर्ववत्कुम्भसाधनम्। शनकैर्घ्राणरन्ध्राभ्यां रेचयेत्पवनं सुधीः।। –वहीं, श्लोक–57
33. पवनो बध्यते येन मनस्तेनैव बध्यते। मनश्च बध्यते येन पवनस्तेन बध्यते।। –वहीं, चतुर्थ उपदेश, श्लोक–21

आचार्य, वेद विभाग,
श्री ला.ब.शा.रा.सं.वि.वि.,
शहीद जीतसिंह मार्ग, कटवारिया सराय,
नयी दिल्ली
मो. 9911559965

भारतीय दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में *विज्ञानभैरवतन्त्र* की मुख्य धारणाओं का अध्ययन

आदित्य कुमार

शोधसार

"भारतीय ज्ञान परम्परा विश्व की प्राचीनतम एवं वैज्ञानिक प्रणालियों में से एक है, जिसमें 'ध्यान' को केवल मानसिक विश्राम का साधन नहीं, अपितु आत्मबोध, चित्तशुद्धि एवं मोक्ष की प्राप्ति का अनिवार्य सोपान माना गया है। इसमें ध्यान को आत्मबोध, चित्तशुद्धि एवं मोक्ष की प्राप्ति का प्रमुख साधन माना गया है। इसका वर्णन वेद, उपनिषद, *भगवद्गीता, पतंजलि योगसूत्र*, आगम तथा तन्त्र साहित्य संबंधित ग्रन्थों में विस्तार से मिलता है।

श्रुतं देव मया सर्वं रुद्रयामलसम्भवम्।
त्रिकभेदमशेषेण सारात्सारविभागशः ॥ [1]

उपर्युक्त श्लोक का भावार्थ कुछ इस प्रकार है की, देवी भैरवी परम तत्त्व के स्वरूप को जानने की जिज्ञासा व्यक्त करती हैं, जिसके उत्तर में भगवान् भैरव 112 धारणा-साधनाओं का उपदेश देते हैं।

प्रस्तुत शोध-पत्र में *विज्ञानभैरवतन्त्र* के मूल पाठ, पारम्परिक टीकाओं का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। शोध का केन्द्रबिन्दु यह समझना है कि विज्ञानभैरवतन्त्र में प्रतिपादित मुख्य धारणा-साधनाओं का दार्शनिक स्वरूप क्या है।

अध्ययन से ज्ञात होता है कि *विज्ञानभैरवतन्त्र* की धारणा-साधनाएँ केवल तान्त्रिक अनुष्ठान नहीं हैं, बल्कि चेतना के परिष्कार एवं आत्मानुभूति की वैज्ञानिक विधियाँ हैं। श्वास, नाद, शून्य, मध्यबिन्दु, साक्षीभाव तथा दैनिक जीवन की सामान्य अनुभूतियों को भी साधना का माध्यम बनाकर यह ग्रन्थ आध्यात्मिक अनुभव को सार्वभौमिक स्वरूप प्रदान करता हैं।

मुख्यशब्द

भारतीय ज्ञान परम्परा, *विज्ञानभैरवतन्त्र*, धारणा-साधना, आगम, तन्त्र,चेतना, कश्मीर शैवदर्शन।

भूमिका

भारतीय ज्ञान परम्परा विश्व की उन विरल परम्पराओं में से है, जिनमें ज्ञान को जीवन के समग्र विकास से सम्बद्ध माना गया है। यहाँ ज्ञान का अर्थ केवल सूचना अथवा बौद्धिक उपलब्धि नहीं, बल्कि आत्मबोध,

चेतना-विकास तथा जीवन के परम उद्देश्य की प्राप्ति है। इसी कारण भारतीय चिन्तन में दर्शन और साधना एक-दूसरे के पूरक माने गए हैं। दर्शन जहाँ सत्य के स्वरूप का विवेचन करता है, वहीं साधना उस सत्य को प्रत्यक्ष अनुभव का विषय बनाती है। यह मानव जीवन के आध्यात्मिक एवं बौद्धिक विकास की एक समन्वित और सुव्यवस्थित प्रणाली है, जिसमें आत्मानुभूति को ही सर्वोच्च लक्ष्य माना गया है। यह परम्परा केवल सूचनाओं का संग्रह नहीं, बल्कि जीवन जीने की एक कला है जहाँ आत्मा के अन्वेषण पर सर्वाधिक बल दिया गया है।

भारतीय आध्यात्मिक परम्परा में तन्त्र साहित्य का विशिष्ट स्थान है। सामान्यतः तन्त्र को रहस्यवाद अथवा कर्मकाण्ड के साथ जोड़ा जाता है, किन्तु उसके मूल स्वरूप में वह चेतना-विज्ञान का एक समृद्ध आयाम प्रस्तुत करता है। तन्त्र साधक को किसी बाह्य सत्ता की उपासना तक सीमित न रखकर उसके अन्तःस्थित दिव्य स्वरूप की पहचान कराने का प्रयास करता है। इसी तान्त्रिक परम्परा में विज्ञानभैरवतन्त्र का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह ग्रन्थ कश्मीर शैवदर्शन की त्रिक परम्परा से सम्बद्ध है और इसमें 112 धारणा-साधनाओं का निरूपण प्राप्त होता है, जिनका उद्देश्य साधक को भैरव-चेतना की अनुभूति तक पहुँचाना है। [2]

'विज्ञान' का अर्थ है 'वैज्ञानिक ज्ञान' अनुभवजन्य अथवा प्रत्यक्ष ज्ञान। इसमें माँ भैरवी के प्रश्नों के उत्तर में भगवान् भैरव आत्मबोध और परम चेतना की प्राप्ति के लिए 112 धारणा-विधियों का वर्णन करते हैं। यही इसकी सबसे विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण विशेषता है।इसमें साधना को किसी एक निश्चित पद्धति तक सीमित नहीं किया गया है। श्वास, ध्वनि, शून्य, प्रकाश, भाव, दृष्टि, प्रेम, विस्मय तथा दैनिक जीवन की सामान्य अनुभूतियों तक को ध्यान का आधार बनाया गया है। इस दृष्टि से यह ग्रन्थ भारतीय ज्ञान परम्परा की उस उदार एवं अनुभवप्रधान प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें जीवन का प्रत्येक क्षण आध्यात्मिक जागरण का माध्यम बन सकता है। [3]

आधुनिक युग में ओशो ने *विज्ञानभैरवतन्त्र* को व्यापक जनसमुदाय तक पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उनके प्रवचन, विशेषतः *The Book of Secrets* तथा *विज्ञानभैरवतन्त्र* (तन्त्र सूत्र), आधुनिक परम्परा के प्रतिनिधि ग्रन्थ माने जाते हैं। अथवा वर्तमान समय में *विज्ञानभैरवतन्त्र* पर अनेक अध्ययन उपलब्ध हैं, किन्तु अधिकांश शोध विशिष्ट धारणाओं, योगिक तकनीकों अथवा कश्मीर शैवदर्शन की तात्त्विक पृष्ठभूमि तक सीमित हैं। उदाहरणार्थ, रोहित चौबे एवं एल. एन. जोशी द्वारा प्राण-धारणा के सन्दर्भ में किया गया अध्ययन श्वास-आधारित धारणाओं के साधनामूलक पक्ष पर प्रकाश डालता है। [4]

विज्ञानभैरवतन्त्र की मुख्य धारणाओं का स्वरूप एवं दार्शनिक आधार

विज्ञानभैरवतन्त्र कश्मीर शैवदर्शन की त्रिक परम्परा का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधना-ग्रन्थ है। जिसमें देवी भैरवी परम तत्त्व की प्राप्ति का मार्ग जानने की जिज्ञासा व्यक्त करती हैं और उसके उत्तर में भगवान् भैरव

112 धारणा-साधनाओं का उपदेश देते हैं। इन धारणाओं की विशेषता यह है कि इनमें किसी एक निश्चित धार्मिक पद्धति, सम्प्रदाय या अनुष्ठान पर बल न देकर प्रत्यक्ष अनुभव को साधना का आधार बनाया गया है।[5]

कश्मीर शैवदर्शन में परम सत्य को चेतना या चित् के रूप में स्वीकार किया गया है। यह चेतना स्थिर, निष्क्रिय अथवा जड़ नहीं है, बल्कि स्वातन्त्र्य-शक्ति से सम्पन्न, सृजनशील एवं सर्वव्यापक है। *विज्ञानभैरवतन्त्र* की समस्त धारणा-साधनाएँ साधक को इसी सार्वभौमिक चेतना का प्रत्यक्ष अनुभव कराने के उद्देश्य से निर्मित प्रतीत होती हैं। इसीलिए यहाँ साधना का लक्ष्य किसी बाह्य ईश्वर की प्राप्ति नहीं, बल्कि अपने अन्तर्निहित भैरवस्वरूप का प्रत्यभिज्ञान है।[6]

श्वास, ध्वनि, दृष्टि, प्रेम, विस्मय, निद्रा, मौन, शून्यता तथा दैनिक अनुभवों को भी साधना का आधार बनाया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि विज्ञानभैरवतन्त्र आध्यात्मिकता को संसार से पलायन नहीं मानता, बल्कि जीवन के मध्य ही चेतना के जागरण की सम्भावना को स्वीकार करता है। [7]

धारणा की अवधारणा

धारणा' शब्द संस्कृत धातु 'धृ' से निर्मित है, जिसका अर्थ है-धारण करना, स्थिर रखना अथवा केन्द्रित करना। योगदर्शन में धारणा अष्टाङ्गयोग का छठा अंग है, जहाँ चित्त को किसी एक देश या बिन्दु में स्थिर किया जाता है। पतञ्जलि ने इसे **"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा"** कहा है। [8]

किन्तु विज्ञानभैरवतन्त्र में धारणा का स्वरूप केवल मानसिक एकाग्रता तक सीमित नहीं है। यहाँ धारणा चेतना के उस सूक्ष्म बिन्दु को स्पर्श करने का माध्यम है जहाँ से साधक द्वैत की सीमाओं का अतिक्रमण कर सकता है। इसीलिए विज्ञानभैरवतन्त्र की धारणाएँ मन को दबाने का प्रयास नहीं करतीं, बल्कि मन के माध्यम से ही मन से परे की स्थिति की ओर संकेत करती हैं।

***विज्ञानभैरवतन्त्र* की कुछ मुख्य धारणा-साधनाएं**

विज्ञानभैरवतन्त्र में सांस, शून्य,ध्वनि आदि से संबंधित प्रमुख धारणाएं (ध्यान विधियां) नीचे दी गई हैं, जो साधक को चेतना की उच्च अवस्था प्राप्त करने में सहायक हैं। ये विधियां दो सांसों के बीच का ठहराव, कुंभक, आज्ञा चक्र एकाग्रता, और अनाहत नाद इत्यादि पर केंद्रित करती हैं।

प्राण-धारणा : श्वास और चेतना का सेतु

प्रारम्भिक एवं अत्यन्त प्रसिद्ध धारणाओं में प्राण-धारणा का विशेष स्थान है अथवा कई धारणाएं प्राण पर आधारित मिलती हैं। श्वास को केवल जैविक क्रिया न मानकर चेतना और शरीर के मध्य सेतु के रूप में देखा गया है। ग्रन्थ में कहा गया है-

ऊर्ध्वे प्राणो ह्यधो जीवो विसर्गात्मा परोच्चरेत्।
उत्पत्तिद्वितयस्थाने भरणाद्धरिता स्थितिः ॥ [9]

इसका भावार्थ कुछ इस प्रकार है कि, श्वास के रूप में ऊपर जाने वाला प्राण और नीचे जाने वाला अपान निरन्तर गतिशील हैं। इन दोनों की गति के मध्य जो सूक्ष्म बिन्दु या विराम-स्थिति है, उस पर सजग होकर ध्यान करने से साधक पूर्णता अथवा भैरव-चेतना की अवस्था को प्राप्त करता है।

मरुतोऽन्तर्बहिर्वापि वियद्युग्मानिवर्तनात्।
भैरव्या भैरवस्येत्थं भैरवि व्यज्यते वपुः ॥ [10]

अर्थात्, श्लोक में श्वास के भीतर और बाहर जाने के मध्य स्थित सूक्ष्म बिन्दु को भैरव-चेतना की अनुभूति का द्वार कहा गया है।इस धारणा का मूल संकेत श्वास के आने-जाने की प्रक्रिया के मध्य स्थित उस सूक्ष्म विराम की ओर है, जहाँ मन क्षणिक रूप से शान्त हो जाता है। विज्ञानभैरवतन्त्र साधक को इसी मध्यबिन्दु के प्रति सजग होने का निर्देश देता है।

शून्य-धारणा : रिक्तता में चैतन्य का अनावरण

आज्ञा चक्र पर ध्यान: आँखें बंद करके मन को दोनों भौहों के बीच स्थित आज्ञा चक्र में एकाग्र करने से विचारों की शांति और परम लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

तयापूर्याशु मूर्धान्तं भङ्क्त्वा भ्रूक्षेपसेतुमा।
निर्विकल्पं मनः कृत्वा सर्वोर्ध्वे सर्वगोद्गमः ॥ [11]

अर्थात, साधक उस चेतना-शक्ति (या प्राणशक्ति) को ऊपर उठाकर भ्रूमध्य से आगे मस्तक के शीर्ष (ब्रह्मरन्ध्र) तक ले जाए। फिर मन को पूर्णतः निर्विकल्प (विचार-रहित) कर दे। तब वह सर्वव्यापक भैरव-चेतना के सर्वोच्च उदय का अनुभव करता है।

विज्ञानभैरवतन्त्र की यह धारणा खेचरीमुद्रा जैसी प्रतीत होती है, अथवा अनेक धारणाएँ साधक को उस बिन्दु तक ले जाने का प्रयास करती हैं जहाँ विचार, कल्पना तथा मानसिक संकल्पनाएँ स्वतः शान्त हो जाती हैं। इस अवस्था को ग्रन्थ में विभिन्न स्थानों पर शून्य, व्योम, रिक्तता अथवा मध्य के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। यहाँ 'शून्य' का अर्थ नास्तित्व या अभाव नहीं है, बल्कि वह चेतन रिक्तता है जिसमें समस्त मानसिक गतिविधियाँ विलीन होकर अपने मूल स्रोत में अवस्थित हो जाती हैं। [12]

भारतीय दर्शन में शून्य की अवधारणा विभिन्न रूपों में प्राप्त होती है, किन्तु *विज्ञानभैरवतन्त्र* में इसका स्वरूप विशिष्ट है। यहाँ शून्य किसी दार्शनिक सिद्धान्त का विषय नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव का क्षेत्र है। जब साधक विचारों के मध्य स्थित रिक्त क्षण को पहचानता है, तब वह अनुभव करता है कि चेतना विचारों

पर आश्रित नहीं है। विचार आते-जाते रहते हैं, किन्तु उन्हें जानने वाली सत्ता सदैव उपस्थित रहती है। यही सत्ता भैरवस्वरूप चेतना है। [13]

नाद-धारणा : ध्वनि से मौन की यात्रा

अनहद नाद या ध्वनि पर ध्यान : किसी वाद्य यंत्र के स्वर या भीतर की सूक्ष्म ध्वनि के विलीन होने के अंतिम बिंदु पर ध्यान केंद्रित करने से साधक ब्रह्म भाव में लीन हो जाता है।

अनाहते पात्रकर्णेऽभग्नशब्दे सरिद्द्रुते।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।। [14]

अर्थात्, नदी की निरन्तर प्रवाहित ध्वनि में गहन रूप से स्नान करो, अथवा कानों को बंद करके ईश्वर की अनाहत ध्वनि सुनो। तत्पश्चात व्यक्ति ईश्वर का अनुभूति करेगा।

भारतीय आध्यात्मिक परम्परा में नाद का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। वेदों में मन्त्र, उपनिषदों में प्रणव तथा तन्त्र परम्परा में आन्तरिक ध्वनि को चेतना-जागरण का साधन माना गया है। *विज्ञानभैरवतन्त्र* भी नाद को साधना का एक प्रभावशाली माध्यम स्वीकार करता है। [15]

नाद-धारणा का मूल सिद्धान्त यह है कि साधक बाह्य ध्वनियों से क्रमशः आन्तरिक ध्वनि की ओर उन्मुख हो। प्रारम्भ में ध्वनि श्रवण का विषय प्रतीत होती है, किन्तु गहन जागरूकता में वही साधक को उस मौन तक ले जाती है जहाँ ध्वनि का उद्गम स्थित है। इस प्रकार नाद स्वयं लक्ष्य नहीं, बल्कि मौन की ओर ले जाने वाला सेतु है।

कश्मीर शैवदर्शन में सम्पूर्ण सृष्टि को स्पन्द का परिणाम माना गया है। स्पन्द का अर्थ है चेतना का सूक्ष्म कम्पन। नाद इसी स्पन्द का अनुभवात्मक रूप है। अतः नाद-धारणा केवल श्रवण-प्रक्रिया नहीं, बल्कि चेतना की मूल गतिशीलता के प्रति सजग होने का उपाय है। [16]

मध्यबिन्दु-धारणा और अद्वैत का अनुभव

विज्ञानभैरवतन्त्र की अनेक धारणाएँ "मध्य" की अवधारणा पर आधारित हैं।

हृद्याकाशे निलीनाक्षः पद्मसम्पुटमध्यगः।
अनन्यचेताः सुभगे परं कल्याणमाप्नुयात्॥ [17]

अर्थात, जो साधक अपनी इंद्रियों को बाहरी दुनिया से समेटकर, अपने हृदय रूपी कमल के मध्य भाग में एकाग्रचित्त होकर लीन हो जाता है, वह परम कल्याण (मोक्ष) को प्राप्त करता है।

उभयोरभावो मध्ये कस्य मोद उपजायते।
तत्त्वतो वस्तुतस्तस्य तन्मयत्वं प्रजायते॥ [18]

अर्थात, दो विचारों या दो अनुभूतियों के मध्य में जो शून्यता (अभाव) है, उस पर जो मन को स्थिर कर लेता है, उसके भीतर वास्तविक आनन्द का उदय होता है और वह उस परम तत्त्व में तन्मय (लीन) हो जाता है।

कश्मीर शैवदर्शन में मध्य केवल भौतिक केन्द्र नहीं, बल्कि चेतना का वह बिन्दु है जहाँ द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं।श्वास के मध्य, विचारों के मध्य, ध्वनियों के मध्य अथवा अनुभवों के मध्य उपस्थित रिक्तता को साधना का आधार बनाना विज्ञानभैरवतन्त्र की विशिष्टता है। यहाँ 'मध्य' का अर्थ उस चेतनावस्था से है जहाँ साधक न विषय में रहता है और न विषयी में, बल्कि दोनों के आधारभूत चैतन्य का अनुभव करता है। [19]

साक्षीभाव एवं जागरूकता : विज्ञानभैरवतन्त्र की धारणाओं का सामान्य साधनामूलक आधार

यदि विज्ञानभैरवतन्त्र की समस्त 112 धारणा-साधनाओं का एक सामान्य सूत्र खोजा जाए, तो वह है- जागरूकता। विविध विधियों का बाह्य स्वरूप भिन्न हो सकता है, किन्तु उनका अन्तिम उद्देश्य साधक को साक्षीभाव की अवस्था तक पहुँचाना है। [20]

साक्षीभाव का अर्थ है-विचारों, भावनाओं, संवेदनाओं तथा अनुभवों को उनसे तादात्म्य स्थापित किए बिना देखना। जब साधक देखने वाले और देखे जाने वाले के मध्य अन्तर का अनुभव करता है, तब चेतना की स्वतन्त्र सत्ता का बोध होने लगता है।विज्ञानभैरवतन्त्र की अनेक धारणाएँ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इसी साक्षीभाव को विकसित करती हैं। श्वास को देखना, नाद को सुनना, शून्य का अनुभव करना अथवा मध्यबिन्दु पर ध्यान देना-इन सभी का लक्ष्य साधक को देखने वाले की स्थिति में प्रतिष्ठित करना है।

चेतना और भैरवत्व : विज्ञानभैरवतन्त्र का दार्शनिक निष्कर्ष

विज्ञानभैरवतन्त्र की समस्त धारणा-साधनाओं का अन्तिम लक्ष्य भैरवत्व की अनुभूति है। यहाँ भैरव किसी पौराणिक देवता का सीमित रूप नहीं, बल्कि सार्वभौमिक चेतना का प्रतीक है। कश्मीर शैवदर्शन के अनुसार यही चेतना सम्पूर्ण अस्तित्व की आधारशिला है।

धारणा-साधनाओं का उद्देश्य साधक को किसी नवीन वस्तु की प्राप्ति कराना नहीं, बल्कि उसकी विस्मृत चेतना का पुनर्जागरण करना है। इसीलिए विज्ञानभैरवतन्त्र की दृष्टि में मुक्ति कोई भविष्य की उपलब्धि नहीं, बल्कि वर्तमान क्षण में उपलब्ध चेतना की पहचान है।

तन्त्र का सार्वभौमिक स्वरूप

परम्परागत दृष्टि में तन्त्र को प्रायः किसी विशेष धार्मिक परम्परा या साधना-पद्धति से जोड़कर देखा जाता है।विज्ञानभैरवतन्त्र की 112 विधियाँ किसी धर्म, सम्प्रदाय अथवा जाति-विशेष के लिए नहीं हैं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए हैं।

यह दृष्टिकोण भारतीय ज्ञान परम्परा की उस व्यापक भावना के अनुरूप है जिसमें सत्य को सार्वभौमिक माना गया है। तथापि यहाँ यह प्रश्न भी उठता है कि क्या तन्त्र को उसके विशिष्ट दार्शनिक सन्दर्भों से पृथक कर केवल सार्वभौमिक मनोविज्ञान के रूप में प्रस्तुत करना पर्याप्त है? किन्तु दूसरी ओर यह भी देखा जा सकता है कि उनकी व्याख्या में कश्मीर शैवदर्शन की कुछ विशिष्ट दार्शनिक संकल्पनाएँ अपेक्षाकृत गौण हो जाती हैं। उदाहरणार्थ, प्रत्यभिज्ञा, स्पन्द, शिव-शक्ति अभेद तथा भैरवत्व जैसे तत्त्वों पर उतना विस्तार नहीं मिलता जितना कि चेतना, जागरूकता और ध्यान की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया पर। [21]

उपसंहार

भारतीय ज्ञान परम्परा में ज्ञान, साधना और अनुभूति का घनिष्ठ सम्बन्ध स्वीकार किया गया है। विज्ञानभैरवतन्त्र इसी परम्परा का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसमें 112 धारणा-साधनाओं के माध्यम से चेतना के विविध आयामों का उद्घाटन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि विज्ञानभैरवतन्त्र की धारणा-साधनाएँ केवल तान्त्रिक अनुष्ठान नहीं हैं, बल्कि आत्मानुभूति, चेतना-विस्तार और भैरवत्व की प्राप्ति के व्यावहारिक साधन हैं।

प्राण-धारणा,मध्यबिन्दु, शून्य, नाद तथा साक्षीभाव सम्बन्धी धारणाओं के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि विज्ञानभैरवतन्त्र साधना को जीवन से पृथक् नहीं करता, बल्कि जीवन के सामान्य अनुभवों को ही आध्यात्मिक जागरण का माध्यम बनाता है। यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

अतः कहा जा सकता है कि विज्ञानभैरवतन्त्र भारतीय ज्ञान परम्परा की तात्त्विक गहराई का प्रतिनिधित्व करता है, अथवा इससे भारतीय ज्ञान परम्परा की निरन्तर जीवंतता और समकालीन उपयोगिता भी प्रमाणित होती है।विज्ञानभैरवतन्त्र की धारणा-साधनाएँ यह प्रतिपादित करती हैं कि चेतना की सर्वोच्च अवस्था किसी विशेष धार्मिक अनुष्ठान अथवा दार्शनिक बौद्धिकता का परिणाम नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव का विषय है। इस दृष्टि से यह ग्रन्थ भारतीय ज्ञान परम्परा के उस मूल स्वर को अभिव्यक्त करता है जिसमें ज्ञान, साधना और अनुभूति परस्पर अभिन्न माने गए हैं। समकालीन मानसिक तनाव, अस्तित्वगत संकट तथा चेतना-अध्ययन के क्षेत्र में भी विज्ञानभैरवतन्त्र की धारणा-साधनाएँ महत्त्वपूर्ण वैचारिक एवं व्यावहारिक योगदान प्रदान कर सकती हैं।

मूल ग्रन्थ सूची

अंजना, बापूलाल (सम्पा.) (सं.). *विज्ञानभैरवतन्त्रम्।* वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान।
दशोरा, नन्दलाल। (वर्ष अज्ञात). *विज्ञान भैरव : रुद्रयामल तन्त्र का गूढ़ रहस्य।* जयपुर: प्रकाशक।
क्षेमराज। *विज्ञानभैरवतन्त्र*-टीका। कश्मीर शृंखला संस्करण।

सन्दर्भ

1 *विज्ञानभैरवतन्त्रम्,* श्लोक 01.
2 *विज्ञानभैरवतन्त्रम्, भूमिका तथा प्रारम्भिक श्लोक।*

3 *विज्ञानभैरवतन्त्रम्, श्लोक 24-28 एवं अन्य धारणा-विधियाँ।*
4 Rohit Chobe& L. N. Joshi, *"A Study on Prana Dharana (Breath Meditation Technique)in Context of Vigyan Bhairava Tantra",* International Journal of Science and Consciousness, Vol. 2, No. 3, 2016.
5 *विज्ञानभैरवतन्त्रम्,* भूमिका।
6 क्षेमराज, *विज्ञानभैरवतन्त्र*-टीका, प्रस्तावना।
7 नन्दलाल दशोरा, *विज्ञान भैरव : रुद्रयामल तन्त्र का गूढ़ रहस्य,* भूमिका।
8 *पतञ्जलियोगसूत्र,* 3.1.
9 *विज्ञानभैरवतन्त्रम्,* श्लोक 24.
10 *विज्ञानभैरवतन्त्रम्,* श्लोक 25.
11 *विज्ञानभैरवतन्त्रम्,* श्लोक 31.
12 *विज्ञानभैरवतन्त्रम्,* चयनित शून्य-सम्बन्धी धारणाएँ।
13 *क्षेमराज-टीका,* शून्य एवं मध्य की व्याख्या।
14 *विज्ञानभैरवतन्त्रम्,* श्लोक 38.
15 *विज्ञानभैरवतन्त्रम्,* नाद-सम्बन्धी धारणाएँ।
16 K.C. Pandey, *Abhinavagupta: An Historical and Philosophical Study.*
17 *विज्ञानभैरवतन्त्रम्,* श्लोक 48.
18 *विज्ञानभैरवतन्त्रम्,* श्लोक 60.
19 Jaideva Singh, *Vijnana Bhairava, Commentary on Middle Awareness.*
20 *विज्ञानभैरवतन्त्रम्,* विविध धारणा-साधनाओं का समन्वित अध्ययन।
21 K.C. Pandey, *Abhinavagupta; Jaideva Singh, Vijnana Bhairava.*

शोधछात्र,
भारतीय दर्शन विभाग,
कविकुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय,
रामटेक,
नागपुर-441106
ORCID ID: 0009-0009-1644-0258
Mobile No. +91 8294854448
Gmail: aaditya.razz1999@gmail.com,
phd.aadityak97@kksu.org

नारदपाञ्चरात्र-भारद्वाजसंहिता में परमनि:श्रेयस का उपाय : न्यासयोग एवं प्रपत्ति

डॉ. छबिलाल न्यौपाने

सारांश (Abstract)

यह शोधपत्र वैष्णव आगमिक परम्परा, विशेष रूप से *नारदपाञ्चरात्र-भारद्वाजसंहिता* के आलोक में, परमनिःश्रेयस (मोक्ष) की प्राप्ति के सर्वोत्कृष्ट उपाय के रूप में 'न्यासयोग' अथवा 'प्रपत्ति' (शरणागति) की अवधारणा का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। शोध में यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार यह न्यासयोग वैदिक, स्मार्त तथा आगमिक सभी मार्गों में रहस्यरूप से विद्यमान एक सार्वभौमिक, सुलभ एवं सर्वसाधारण के लिए उपयुक्त साधना पद्धति है। इसमें गुरु की अनिवार्यता, योग्य शिष्य के लक्षण, मन्त्र दीक्षा का स्वरूप तथा सात्त्विक प्रपत्ति की श्रेष्ठता जैसे विषयों का विस्तृत विवेचन किया गया है। शोध का निष्कर्ष यह है कि *भारद्वाजसंहिता* के अनुसार, आत्मनिवेदनरूप यह न्यासयोग ही समस्त बन्धनों से मुक्ति दिलाकर जीव को परमपद की प्राप्ति कराने वाला परम उपाय है।

कूटशब्द (Keyword)

न्यासयोग, प्रपत्ति, शरणागति, भारद्वाजसंहिता, नारदपाञ्चरात्र, वैष्णव आगम, परमनिःश्रेयस, मोक्ष, वैष्णव दर्शन, पाञ्चरात्र संहिता, दीक्षा, गुरु-शिष्य परम्परा, मन्त्र, सात्विक प्रपत्ति, आत्मसमर्पण।

1. **प्रस्तावना** (Introduction)

वैष्णव परम्परा एक समृद्ध तथा बहुआयामी दार्शनिक एवं साधनात्मक इतिहास रखती है। इसमें आगम, सम्प्रदाय एवं तन्त्र— ये तीनों स्तम्भ अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। आगम पूजा-विधान का शास्त्रीय आधार प्रदान करते हैं, सम्प्रदाय दार्शनिक मत एवं संस्थागत अनुशासन स्थापित करते हैं, जबकि तन्त्र गूढ़ साधना-पद्धतियों का प्रतिपादन करता है। नारदपाञ्चरात्र आगम इसी वैष्णव आगमिक साहित्य का एक प्रमुख ग्रन्थ है। भारद्वाजसंहिता इसी पाञ्चरात्र परम्परा से सम्बद्ध एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ-समूह है, जो अर्चा-विधान, मन्त्र-न्यास, यन्त्र-पूजन और देवालय-नियमों जैसे विषयों का प्रामाणिक स्रोत है।

इस समस्त साहित्य का चरम लक्ष्य 'परमनिः श्रेयस' अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति है। *भारद्वाजसंहिता* में ऋषिगण इसी मूल प्रश्न को लेकर भारद्वाज मुनि के समक्ष उपस्थित होते हैं — "हे भगवन्, इस लोक में सभी प्राणी अपने-अपने कल्मषों को सद्यः दूर करते हुए परमनिःश्रेयस की प्राप्ति किस उपाय से कर सकते हैं?"[1] इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भारद्वाज मुनि 'न्यासयोग' को ही सर्वोत्तम उपाय के रूप में प्रतिपादित करते हैं।

2. शोध की आवश्यकता एवं उद्देश्य (Research Need and Objectives)

इस शोधपत्र का प्रमुख उद्देश्य भारद्वाजसंहिता में वर्णित न्यासयोग की अवधारणा, उसके स्वरूप, प्रकार, साधना-पद्धति एवं फल का गम्भीर अकादमिक विश्लेषण प्रस्तुत करना है। विशिष्ट उद्देश्य इस प्रकार हैं:

1. न्यासयोग के सैद्धान्तिक आधार का परीक्षण करना।
2. प्रपत्ति के विभिन्न स्वरूपों (कायिक, वाचिक, मानसी) एवं गुणात्मक भेदों (सात्विक, राजसिक, तामसिक) का अध्ययन करना।
3. न्यासयोग में गुरु-शिष्य परम्परा, दीक्षा एवं मन्त्र के महत्त्व को रेखांकित करना।
4. इस साधना पद्धति की सार्वभौमिकता एवं सामाजिक समावेशिता का मूल्यांकन करना।

3. न्यासयोग : परमनिःश्रेयस का सर्वोत्कृष्ट उपाय (Nyasa Yoga : The Supreme Means to Liberation)

भारद्वाजसंहिता में न्यासयोग को "समस्त प्राणियों के कल्मष निवारक एक उत्तम योग"[2] कहा गया है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

सार्वभौमिक स्वीकार्यता : यह योग वेद, वेदान्त, स्मृति तथा पाञ्चरात्र आगम आदि सभी शास्त्रों में रहस्यरूप से प्रतिपादित है।[3]

स्वतन्त्र एवं श्रेष्ठ साधन : यह योग कर्म, ज्ञान तथा भक्ति आदि अन्य योगों में सिद्धि दिलाता है, किन्तु उनकी अपेक्षा नहीं रखता। अतः यह उन सबसे श्रेष्ठ है।[4]

स्वरूप : न्यासयोग का स्वरूप है — "स्वात्मा का इष्टदेव (परमात्मा) के प्रति न्यास या प्रपत्तिरूप समर्पण।"[5] यही आत्मार्पण ही परमनिः श्रेयस का एकमात्र साधन है।

सार्वभौमिक पात्रता : इसमें जाति, कुल, लिंग, आयु, देश, काल आदि का कोई बन्धन नहीं है। ब्राह्मण से लेकर अन्त्यज तक कोई भी श्रद्धाभाव से इसका अधिकारी हो सकता है।[6]

4. प्रपत्ति के भेद: स्वरूप एवं साधन (Types of Prapatti: Nature and Means)

भारद्वाजसंहिता प्रपत्ति (शरणागति) के स्वरूप को विस्तार से समझाती है। प्रपत्ति के छः अंग बताए गए हैं[7]:

1. **सङ्कल्प** : अनुकूल अनुष्ठान का दृढ़ संकल्प।
2. **अप्रतिकूल्य** : प्रतिकूल आचरण का परिहार।
3. **विश्वास** : "इष्ट ही मेरी रक्षा करेंगे"— यह दृढ़ आस्था।
4. **वरण** : उसी इष्टदेव को रक्षक के रूप में वरण करना।
5. **न्यास** : स्वयं का इष्टदेव को पूर्ण समर्पण।
6. **कार्पण्य** : स्वयं को अत्यन्त दीन एवं अकिंचन समझने की भावना।

इसके अतिरिक्त, प्रपत्ति के तीन प्रकार कायिक, वाचिक एवं मानसी तथा सात्विक, राजसिक एवं तामसिक गुणों के आधार पर भी इसके भेद किए गए हैं। इनमें सात्विक प्रपत्ति विशेषकर मानसी प्रपत्ति को सर्वश्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि इससे मनीषीगण शीघ्र ही परमसिद्धि प्राप्त कर लेते हैं।[8]

5. गुरु-शिष्य परम्परा एवं दीक्षा का महत्त्व (The Importance of Guru-Disciple Tradition and Initiation)

न्यासयोग की सिद्धि के लिए एक योग्य गुरु से दीक्षा लेना अनिवार्य बताया गया है।

गुरु के लक्षण : आचार्य ऐसा होना चाहिए जो मन्त्रानुसंधान में रत, मन्त्र के तात्त्विक रहस्यों को जानने वाला, शिष्य के प्रति हितबुद्धि रखने वाला, निष्काम, पवित्र, प्रशान्त तथा वेदज्ञ ब्राह्मण हो।[9] उसका वंश परम्परा से शुद्ध होना चाहिए।[10] हाँ, यदि कोई ज्ञान-भक्ति से सम्पन्न है तो वह वंश के अभाव में भी आचार्य हो सकता है।[11]

शिष्य के लक्षण : शिष्य शान्त प्रकृति का, असूयारहित, गुरु के प्रति समर्पित, इन्द्रियों को वश में रखने वाला तथा बुद्धिमान होना चाहिए।[12]

दीक्षा का स्वरूप : आचार्य को अपने हाथ से शिष्य के शरीर का स्पर्श करते हुए तथा उसे देखते हुए दीक्षा मन्त्र प्रदान करना चाहिए।[13] ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के लिए वैदिक मन्त्र तथा शूद्रादि के लिए तान्त्रिक/लौकिक भाषा वाले मन्त्र उपयुक्त बताए गए हैं।[14]

6. साधना-पद्धति एवं वर्ज्य आचरण (Sadhana Methodology and Forbidden Conduct)

दीक्षा के पश्चात् साधक को छः प्रकार की वृत्ति (आचरण) का पालन करना चाहिए[15]:

1. विहित कर्मों का आचरण।
2. प्रतिषिद्ध कर्मों का त्याग।
3. इष्ट (विष्णु) में दृष्टि (एकनिष्ठ ज्ञान)।
4. उन्हीं की भक्ति।
5. शंख-चक्र आदि लाञ्छन धारण करना।
6. सन्तों एवं आचार्यों की सेवा।

इसके साथ ही, ग्रन्थ में अनेक वर्ज्य आचरण (अपचार) भी गिनाए गए हैं, जैसे विष्णु के अतिरिक्त अन्य देवताओं को इष्ट मानना, गुरु का अनादर करना, भागवतजनों का तिरस्कार करना आदि।[16] इन अपचारों के रहते हुए भगवान की अनुग्रह-प्राप्ति सम्भव नहीं है।

7. निष्कर्ष (Conclusion)

नारदपाञ्चरात्र-परम्परा से सम्बद्ध भारद्वाजसंहिता वैष्णव आगमिक साधना का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ परमनिःश्रेयस की प्राप्ति के लिए 'न्यासयोग' या 'प्रपत्ति'को सर्वोत्कृष्ट, सरल तथा सर्व-सुलभ

साधना के रूप में प्रतिष्ठित करता है। यह साधना जाति-पाँति, लिंग, अवस्था आदि के भेद से ऊपर उठकर केवल श्रद्धा एवं समर्पणभाव पर केन्द्रित है। एक योग्य गुरु से दीक्षा लेकर, उचित मन्त्र का जप करते हुए तथा सात्त्विक प्रपत्ति के भाव को दृढ़तापूर्वक धारण करके कोई भी साधक अपने सभी कल्मषों का निवारण कर सकता है और अन्ततः भगवान् श्रीविष्णु के दास्यभावरूप परमानन्द को प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार, भारद्वाजसंहिता में प्रतिपादित न्यासयोग का सिद्धान्त न केवल वैष्णव दर्शन की एक उच्चतम उपलब्धि है, अपितु आध्यात्मिक साधना में एक क्रान्तिकारी एवं लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण का प्रतीक भी है।

ग्रन्थसूची (Bibliography)

नारदपाञ्चरात्र - भारद्वाजसंहिता, सम्पादक एवं अनुवादक श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई 2016

सन्दर्भ

1. केनोपायेन भगवन्निह सर्वेऽपि जन्तवः।प्राप्नुयुः परमां सिद्धिं सद्यो विगतकल्मषाः॥
   - *नारदपाञ्चरात्र-भारद्वाजसंहिता 1.2*
2. श्रूयतां सम्प्रवक्ष्यामि न्यासाख्यं योगमुत्तमम्। सिद्धिश्चैवास्य परमां द्वयमेतच्छ्रुतम् मया॥
   - *नारदपाञ्चरात्र-भारद्वाजसंहिता 1.4*
3. अयञ्च योगो वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते। तथैव धर्मशास्त्रेषु दिव्यशास्त्रगणेषु च॥
   - *नारदपाञ्चरात्र-भारद्वाजसंहिता 1.5*
4. अनेनैव हि कर्माद्याः योगाः सिध्यन्ति योगिनाम् । सिद्धिर्न तद्व्यपेक्षास्य तस्मादेनं परं विदुः॥
   - *नारदपाञ्चरात्र-भारद्वाजसंहिता 1.6*
5. निश्चितेऽनन्यसाध्यस्य परत्रेष्टस्य साधने। अयमात्मभरन्यासः प्रपत्तिरिति चोच्यते॥
   - *नारदपाञ्चरात्र-भारद्वाजसंहिता 1.7*
6. न जातिभेदं न कुलं न लिङ्गं न गुणक्रियाः। न देशकाला नावस्थां योगो ह्ययमपेक्षते॥
   ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्राः स्त्रियश्चान्तरजास्तथा। सर्व एव प्रपद्येरन् सर्वधातारमच्युतम्॥
   - *नारदपाञ्चरात्र-भारद्वाजसंहिता 1.14-15*
7. प्रपत्तिरानुकूल्यस्य सङ्कल्पोऽप्रतिकूलता। विश्वासो वरणं न्यासः कार्पण्यमिति षड्विधा॥
   कृतानुकूल्यसङ्कल्पः प्रातिकूल्यं विवर्जयेत्। विश्वासशाली कृपणः प्रार्थयन् रक्षणं प्रति॥
   - *नारदपाञ्चरात्र-भारद्वाजसंहिता 1.17-18*
8. सत्वजा मानसी त्वेका तत्र मुख्यतमा मता। तया हि परमां सिद्धिं सद्यो यान्ति मनीषिणः॥
   - *नारदपाञ्चरात्र-भारद्वाजसंहिता 1.29*

9. प्रपित्सुर्मन्त्रनिरतं प्राज्ञं हितपरं शुचिम्। प्रशान्तं नियतं वृत्तौ भजेद् द्विजवरं गुरुम्॥
   – *नारदपाञ्चरात्र-भारद्वाजसंहिता 1.38*
10. सप्तपुरुषविज्ञेये सन्ततैकान्तिनिर्मले। कुले जातो गुणैर्युक्तो विप्रो श्रेष्ठतसो गुरुः॥
   – *नारदपाञ्चरात्र-भारद्वाजसंहिता 1.39*
11. स्वयं वा भक्तिसम्पन्नो ज्ञानवैराग्यभूषितः। स्वकर्मनिरतो नित्यमर्हत्याचार्यतां द्विजः॥
   – *नारदपाञ्चरात्र-भारद्वाजसंहिता 1.39*
12. शान्तोऽनसूयुः श्रद्धावान् गुर्वर्थार्थात्मवृत्तिकः। शुचिः प्रियहितो दान्तः शिष्यश्चोक्तो मनीषिभिः॥
   – *नारदपाञ्चरात्र-भारद्वाजसंहिता 1.46*
13. करेण स्पर्शयन् गात्रं मन्त्रविद् भावयेद दृशा । एषा वा सर्ववर्णानां दीक्षेत्याह मुनिः स्वयम्॥
   – *नारदपाञ्चरात्र-भारद्वाजसंहिता 1.51*
14. वैदिकास्तान्त्रिकाश्चैव द्वये मुख्या द्विजन्मनाम्। शुद्रानुलोमजातीनां मन्त्राः स्युस्तान्त्रिकाः परम्॥
   भाषाख्या लौकिका मन्त्राः प्रपत्यर्थविभावनाः। सर्वेभ्यः घ्रतिलोमेभ्यो देयाः कामं द्विजातिभिः॥
   – *नारदपाञ्चरात्र-भारद्वाजसंहिता 1.53-54*
15. वृत्तिश्च विहिताचारः प्रतिषिद्धविवर्जनम्। दृष्टिर्भक्तिस्तथा लक्ष्म सतां सेवेति षड्विधा॥
   – *नारदपाञ्चरात्र-भारद्वाजसंहिता 1.72*
16. एकान्ती शक्तितः कुर्वन् विहितानि समुत्सुकः। तथैव प्रतिषिद्धानि त्यक्त्वा याति परां गतिम्॥
   पाखण्ड-शैवशाक्तादि-तन्त्रार्चालोकनादिकम्।स्वतो ब्रह्माशिवादीनां बद्धानामर्चनादिकम्॥
   ऊनधीः समताशङ्का विष्णोर्विस्मृतिरेव च। अनादरश्च तन्मन्त्रलक्षणार्चाक्रियादिषु॥
   तस्यैवात्यन्तिके दास्ये विमतिः कामकामिता। अविश्वासः प्रपदने साधनान्तरसंश्रयः॥
   साधनत्वाभिमत्या च निजधर्मस्य वर्जनम्। असच्छास्त्रेष्वभिरतिर्दिव्यशास्त्रावधीरणम्॥
   अभागवतसंसर्गो रीढ़ा भागवतेषु च। मर्त्यसामान्यभावेन गुरौ चानतिगौरवम्॥
   – *नारदपाञ्चरात्र-भारद्वाजसंहिता 1.92-97*

सहायक प्राचार्य (दर्शन)
स्नातकोत्तर दर्शन विभाग,
कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय,
कामेश्वर नगर, दरभंगा, बिहार-846004
ईमेल संकेत - chhabilalneupane@hotmail.com
सम्पर्क सूत्र – 9560754554

भगवती तारा एवं छिन्नमस्ता का स्वरूप एवं साहित्य

प्रोफेसर राजेन्द्रप्रसाद शर्मा

भगवती तारा का स्वरूप व साहित्य

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनी कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरां नाशयते तमः।। — *देव्युपनिषद्, 4*

अथ वक्ष्ये महादेव्या मन्त्रोद्धारमनुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा नरो भाति वाचस्पतिरिवापरः।। — *पुरश्चर्यार्णव, पृ. 781*

भगवती काली को ही नीलरूपा होने के कारण तारा भी कहा गया है। वचनान्तर से तारा नाम का रहस्य यह भी है कि ये सर्वदा मोक्ष देनेवाली, तारने वाली हैं, इसलिये इन्हें तारा कहा जाता है। महाविद्याओं में ये द्वितीय स्थान पर परिगणित हैं। अनायास ही वाक्शक्ति प्रदान करने में समर्थ हैं, इसलिये इन्हें नीलसरस्वती भी कहते हैं। भयंकर विपत्तियों से भक्तों की रक्षा करती हैं, इसलिये उग्रतारा हैं। *बृहन्नील-तन्त्रादि* ग्रन्थों में भगवती तारा के स्वरूप की विशेष चर्चा है। हयग्रीव का वध करने के लिये इन्हें नील-विग्रह प्राप्त हुआ था। ये शवरूप शिव पर प्रत्यालीढ़ मुद्रा में आरूढ़ हैं। भगवती तारा नीलवर्णवाली, नीलकमलों के समान तीन नेत्रों वाली तथा हाथों में कैंची, कपाल, कमल और खड्ग धारण करने वाली हैं। ये व्याघ्रचर्म से विभूषिता तथा कण्ठ में मुण्डमाला धारण करने वाली हैं।

शत्रुनाश, वाक्-शक्ति की प्राप्ति तथा भोग-मोक्ष की प्राप्ति के लिये तारा अथवा उग्रतारा की साधना की जाती है। रात्रिदेवी की स्वरूपा शक्ति तारा महाविद्याओं में अद्भुत प्रभाव वाली और सिद्धि की अधिष्ठात्री देवी कही गयी। भगवती तारा के तीन रूप हैं-तारा, एकजटा और नीलसरस्वती। तीनों रूपों के रहस्य, कार्य-कलाप तथा ध्यान परस्पर भिन्न हैं, किन्तु भिन्न होते हुए सब की शक्ति समान और एक है। भगवती तारा की उपासना मुख्यरूप से तन्त्रोक्त पद्धति से होती है, जिसे आगमोक्त पद्धति भी कहते हैं। इनकी उपासना से सामान्य व्यक्ति भी बृहस्पति के समान विद्वान् हो जाता है।

भारत में सर्वप्रथम महर्षि वसिष्ठ ने तारा की आराधना की थी। इसलिये तारा को वसिष्ठाराधिता तारा भी कहा जाता है। वसिष्ठ ने पहले भगवती तारा की आराधना वैदिक रीति से करनी प्रारम्भ की, जो सफल न हो सकी। उन्हें अदृश्यशक्ति से संकेत मिला कि वे तान्त्रिक पद्धति के द्वारा जिसे 'चीनाचार' कहा जाता है, उपासना करें। जब वसिष्ठ ने तान्त्रिक पद्धति का आश्रय लिया, तब उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई। यह कथा *आचारतन्त्र*

में वसिष्ठ मुनि की आराधना उपाख्यान में वर्णित है। इस से यह सिद्ध होता है कि पहले चीन, तिब्बत, लद्दाख आदि में तारा की उपासना प्रचलित थी। तारा का प्रादुर्भाव लद्दाख क्षेत्र के मेरु-पर्वत के पश्चिम भाग में 'चोलना' नाम की नदी के या चोलत सरोवर के तट पर हुआ था, जैसा कि *स्वतन्त्रतन्त्र* में वर्णित है—

मेरोः पश्चिमकूले नु चोलताख्यो ह्रदो महान्।
तत्र जज्ञे स्वयं तारा देवी नीलसरस्वती ॥

'महाकाल-संहिता' के काम-कलाखण्ड में तारा-रहस्य वर्णित है, जिस में तारारात्रि में तारा की उपासना का विशेष महत्त्व है। चैत्र शुक्ल नवमी की रात्रि 'तारारात्रि' कहलाती है—

चैत्रे मासि नवम्यां तु शुक्लपक्षे तु भूपते।
क्रोधरात्रिर्महेशानि तारारूपा भविष्यति।। (*पुरश्चर्यार्णव*, **भाग-3**)

बिहार के सहरसा जिले में प्रसिद्ध 'महिषी' ग्राम में उग्रतारा का सिद्धपीठ विद्यमान है। वहाँ तारा, एकजटा तथा नीलसरस्वती की तीनों मूर्तियाँ एक साथ हैं। मध्य में बड़ी मूर्ति तथा दोनों तरफ छोटी मूर्तियाँ हैं। कहा जाता है कि महर्षि वसिष्ठ ने यहीं तारा की उपासना करके सिद्धि प्राप्त की थी। तन्त्रशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ *महाकाल-संहिता* के गुह्य-काली-खण्ड में महाविद्याओं की उपासना का विस्तृत वर्णन है, उसके अनुसार तारा का रहस्य अत्यन्त चमत्कारजनक है।

हिरण्यगर्भावस्था में कुछ प्रकाश होता है, प्रलयरूपी कालरात्रि में ताराओं के समान सूक्ष्म जगत् के ज्ञान एवं तत्साधनों का प्राकट्य होता है, उसी हिरण्यगर्भ की शक्ति 'तारा' है। सूर्य कोटि भी हिरण्यगर्भ कहा जाता है, सूर्य रुद्र भी कहे जाते हैं। उनका शान्त और घोर दो रूप होता है। हिरण्यगर्भ पहले क्षुधा से उग्र था जब उसे अन्न मिलने लगा, तब शान्त हुआ। उसी उग्र हिरण्यगर्भ की शक्ति उग्रतारा है। ध्यानम्-

प्रत्यालीढपदार्पिताङ्घ्रिशवहृद्घोराट्टहासापरा
खड्गेन्दीवरकर्त्रिखर्परभुजा हुङ्कारबीजोद्भवा।
खर्वानीलविशालपिङ्गलजटाजूटैकनागैर्युता
जाड्यं न्यस्य कपालकर्तृजगतां हन्त्युग्रतारा स्वयम्।।
— *शाक्तप्रमोद-तारातन्त्र,* प. 115

क्षुधातुर हिरण्यगर्भ भी संहारक होता है, अत: उसकी शक्ति तारा भी संहारिणी है। उसने चारों हाथों में जहरीले सर्प लिये हैं। सर्प भी संहार का सूचक है। वह भी शव पर प्रतिष्ठित है। मुण्ड और खप्पर से यह सूचित होता है कि वह भयानक होकर खप्पर द्वारा विश्व का रसपान करती है। उसकी जहरीली रश्मियों की भयानकता दिखलाने के लिए जटाजूट नाग का वर्णन है।

प्रकृतिः पुरुषं स्पृष्ट्वा प्रकृतित्वं समुज्झति।
तदन्तस्त्वेकतां गत्वा नदीरूपमिवार्णवे।।

पुरुष का स्पर्श करते ही प्रकृतित्व को छोड़कर पुरुष के साथ इस तरह मिल जाती है, जैसे नदी समुद्र में मिल जाती है।

अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरञ्च्यादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति।। — *सौन्दर्यलहरी*

हरि, हर, विरञ्चि प्रभृतियों से परमपूज्य अम्बा को प्रणाम या उनका स्तवन किसी अकृतपुण्य प्राणी द्वारा नहीं हो सकता। भगवती की पूजा जैन-बौद्धों में भी होती रही है, विशेषतः तारा की पूजा का रहस्य बुद्ध ही जानते थे। तारा ही द्वितीया रूप से प्रसिद्ध है, सुतारा रूप से वही जैनों में भी पूज्य है, अक्षोभ्य ही वहाँ अवलोकितेश्वर रूप में प्रसिद्ध है।

क्षोभादिरहितो यस्मात् पीतं हालाहलं विषम्।
अत एव महेशानि अक्षोभ्यः परकीर्त्तितः।।
तेन सार्धं महामाया तारिणी रमते सदा।

हलाहल विष पीने पर भी जो क्षोभरहित रहे वही शिव अक्षोभ्य हैं, उनके साथ रमण करने वाली तारा है।

मदीयाराधनाचारं बौद्धरूपी जनार्दनः।
एक एव विजानाति नान्यः कश्चन तत्त्वतः।। — *ललितोपाख्याने*

तारा की ही उक्ति है कि बौद्धाचार से ही उनका पूजन श्रेष्ठ है। तारिणी शक्तियों से विशिष्ट महाशक्ति तारा है। यद्यपि इनकी उपासना-विधि अनेक तन्त्रों में वर्णित है, तथापि उनमें प्रसिद्ध एवं मुख्य तन्त्र-ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं— *तारातन्त्र* (तारिणीतन्त्र), *तारासूक्त*, *तोडलतन्त्र*, *तारार्णव*, *महानीलतन्त्र*, *नीलतन्त्र*, *नीलसरस्वतीतन्त्र*, *चीनाचारतन्त्र*, *तन्त्ररत्न*, *तारोपनिषत्*, *एकजटाकल्प*, *ब्रह्मयामल* के अन्तर्गत *महाचीनाचारक्रम*, *एकवीरतन्त्र* तथा *तारिणीनिर्णय* आदि। इसी तरह प्रकरण ग्रन्थों में लक्ष्मणभट्टकृत *ताराप्रदीप*, नरसिंह ठक्कर कृत *ताराभक्तिसुधार्णव*, आगमाचार्य शंकरकृत *तारारहस्य* तथा इसकी वृत्ति, प्रकाशानन्द कृत, विमलानन्द कृत तथा काशीनाथ कृत तीन *ताराभक्तितरंगिणी*, नित्यानन्द कृत *ताराकल्पलतापद्धति* तथा विद्वद्दुपाध्याय कृत *तारिणीपारिजात* आदि इनकी उपासना-विधि के लिए द्रष्टव्य हैं।

भगवती छिन्नमस्ता का स्वरूप व साहित्य

प्रचण्डचण्डिकां वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदाम्।
यस्या: प्रसादमात्रेण शिव एव भवेन्नर:।। — *पुरश्चर्यार्णव, पृ. 813*

परिवर्तनशील जगत् का अधिपति कबन्ध है और उसकी शक्ति ही छिन्नमस्ता है। विश्व की वृद्धि-ह्रास तो सदैव होती रहती है। जब ह्रास की मात्रा कम और विकास की मात्रा अधिक होती है, तब भुवनेश्वरी का प्राकट्य होता है। इसके विपरीत जब निर्गम अधिक और आगम कम होता है, तब छिन्नमस्ता का प्राधान्य होता है।

भगवती छिन्नमस्ता का स्वरूप अत्यन्त ही गोपनीय है। इसे कोई अधिकारी साधक ही जान सकता है। महाविद्याओं में इनका तीसरा स्थान है। इनके प्रादुर्भाव की कथा इस प्रकार है— एक बार भगवती भवानी अपनी सहचरी जया और विजया के साथ मन्दाकिनी में स्नान करने के लिये गयीं। स्नानोपरान्त क्षुधाग्नि से पीड़ित होकर वे कृष्णवर्ण की हो गयीं। उस समय उनकी सहचरियों ने भी उन से कुछ भोजन करने के लिये माँगा। देवी ने उन से कुछ समय प्रतीक्षा करने के लिये कहा। थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के बाद सहचरियों ने जब पुनः भोजन के लिये निवेदन किया, तब देवी ने उन से कुछ देर और प्रतीक्षा करने के लिये कहा। इस पर सहचरियों ने देवी से विनम्र स्वर में कहा कि 'माँ तो अपने शिशुओं को भूख लगने पर अविलम्ब भोजन प्रदान करती है। आप हमारी उपेक्षा क्यों कर रही हैं?' अपने सहचरियों के मधुर वचन सुनकर कृपामयी देवी ने अपने खड्ग से अपना सिर काट दिया। कटा हुआ सिर देवी के बायें हाथ में आ गिरा और उनके कबन्ध से रक्त की तीन धाराएँ प्रवाहित हुईं। वे दो धाराओं को अपनी दोनों सहचरियों की ओर प्रवाहित कर दीं, जिसे पीती हुई दोनों प्रसन्न होने लगीं और तीसरी धारा को देवी स्वयं पान करने लगीं। तभी से देवी छिन्नमस्ता के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

ऐसा विधान है कि आधी रात अर्थात् चतुर्थ संध्याकाल में छिन्नमस्ता की उपासना से साधक को सरस्वती सिद्ध हो जाती हैं। शत्रु-विजय, समूह स्तम्भन, राज्य-प्राप्ति और दुर्लभ मोक्ष-प्राप्ति के लिये छिन्नमस्ता की उपासना अमोघ है। छिन्नमस्ता का आध्यात्मिक स्वरूप अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। छिन्न यज्ञशीर्ष की प्रतीक ये देवी श्वेतकमल-पीठ पर खड़ी हैं। दिशाएँ ही इनके वस्त्र हैं। इनकी नाभि में योनिचक्र है। कृष्ण (तम) और रक्त (रज) गुणों की देवियाँ इनकी सहचरियाँ हैं। ये अपना शीश काटकर भी जीवित हैं। यह अपने-आप में पूर्ण अन्तर्मुखी साधना का संकेत है।

विद्वानों ने इस कथा में सिद्धि की चरम सीमा का निर्देश माना है। योगशास्त्र में तीन ग्रन्थियाँ बतायी गयी हैं, जिनके भेदन के बाद योगी को पूर्ण सिद्धि प्राप्त होती है। इन्हें ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि तथा रुद्रग्रन्थि कहा गया है। मूलाधार में ब्रह्मग्रन्थि, मणिपूर में विष्णुग्रन्थि तथा आज्ञाचक्र में रुद्रग्रन्थि का स्थान है। इन ग्रन्थियों के भेदन से ही अद्वैतानन्द की प्राप्ति होती है। योगियों का-ऐसा अनुभव है कि मणिपूर चक्र के नीचे की

नाड़ियों में ही काम और रति का मूल है, उसी पर छिन्ना महाशक्ति आरूढ़ है, इसका ऊर्ध्व प्रवाह होने पर रुद्रग्रन्थि का भेदन होता है।

छिन्नमस्ता का वज्र वैरोचनी नाम शाक्तों, बौद्धों तथा जैनों में समान रूप से प्रचलित है। देवी की दोनों सहचरियाँ रजोगुण तथा तमोगुण की प्रतीक हैं, कमल विश्वप्रपञ्च है और कामरति चिदानन्द की स्थूलवृत्ति है। बृहदारण्यक की अश्वशिर-विद्या, शाक्तों की हयग्रीव विद्या तथा गाणपत्यों के छिन्नशीर्ष गणपति का रहस्य भी छिन्नमस्ता से ही सम्बन्धित है। हिरण्यकशिपु, वैरोचन आदि छिन्नमस्ता के ही उपासक थे। इसीलिये इन्हें वज्र वैरोचनीया कहा गया है। वैरोचन अग्नि को कहते हैं। अग्नि के स्थान मणिपूर में छिन्नमस्ता का ध्यान किया जाता है और वज्रानाड़ी में इनका प्रवाह होने से इन्हें वज्र वैरोचनीया कहते हैं। *श्री भैरवतन्त्र* में कहा गया है कि इनकी आराधना से साधक जीवभाव से मुक्त होकर शिवभाव को प्राप्त कर लेता है।

विपरिणतमान जगत् का अधिपति चेतन कबन्ध है, उसकी शक्ति 'छिन्नमस्ता' है। विश्व का उपचय-अपचय तो हर समय ही होता रहता है, परन्तु जब ह्रास की मात्रा कम और विकास या आगम की मात्रा ज्यादा रहती है, तब भुवनेश्वरी का प्राकट्य होता है। जब निर्गम अधिक और आगम कम हो जाता है, तब छिन्नमस्ता का प्राधान्य होता है। उसका ध्यान यह है—

प्रत्यालीढपदां सदैव दधतीं छिन्नं शिर: कर्त्रिकाम्,
दिग्वस्त्रां स्वकबन्धशोणितसुधाधारां पिबन्तीं मुदाम्।
नागाबद्धशिरोमणिं त्रिनयनां हृद्युत्पलालङ्कृतां,
रत्यासक्तमनोभवोपरिदृढां ध्यायेज्जवासन्निभाम्।। 1।।
दक्षे चातिसिताविमुक्तचिकुरां कर्त्रीं तथा खर्परं,
हस्ताभ्यां दधतीं रजोगुणभुवा नाम्नाऽपि सावर्णिनीम्।
देव्याश्छिन्नकबन्धत: पतदसृग्धारां पिबन्तीं मुदा,
नागाबद्धशिरोमणिर्मनुविदा ध्येया सदा सा सुरै:।। 2 ।।
प्रत्यालीढपदा कबन्धविगलद्रक्तं पिबन्तीं मुदा,
सैषा या प्रलये समस्तभुवनं भोक्तुं क्षमा तामसी।
शक्ति साऽपि परात्परा भगवती नम्रा परा डाकिनी,
ध्येया ध्यानपरै: सदा सविनयं भक्तेष्टभूतिप्रदा।।3।।

— *शाक्तप्रमोद छिन्नमस्तातन्त्र, पृ. 221*

छिन्नमस्ता भगवती छिन्नशीर्ष और कर्तरी एवं खप्पर को लिये हुए स्वयं दिगम्बर रहती है। कबन्ध-शोणित की धारा को पीती रहती, कटे हुए शिर में नागाबद्ध मणि विराजमान है और नील नयन हैं, हृदय में उत्पल की माला है, रत्यासक्त मनोभाव के ऊपर विराजमान रहती है।

शाक्तप्रमोद, पुरश्चर्यार्णव तथा *आगमकल्पलता* आदि दस महाविद्याओं की उपासनाविधि के प्रतिपादक ग्रन्थों में इनकी उपासना-विधि एवं माहात्म्य वर्णित हैं। *शक्तिसंगमतन्त्र* का *छिन्नमस्ताखण्ड* इनका माहात्म्य तो प्रदर्शित करता है, किन्तु उपासना-विधि का संकेत मात्र करता है। *भैरवीतन्त्रोक्त* इनका *त्रैलोक्यविजयकवच, शाक्तप्रमोद* का *छिन्नमस्तास्तोत्र, विश्वसार तन्त्रोक्त* इनका सहस्रनाम एवं शतनाम आदि द्रष्टव्य हैं

छिन्नमस्ता विषयक स्तोत्र परिशिष्ट के स्तोत्र संग्रह संख्या (248-259) में मेरे द्वारा संकलित हैं।

प्रो. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा
(शिवानन्दनाथ पूर्णाभिषिक्त)
सम्पादक
55 गोविन्दनगर, वैशाली नगर, जयपुर-302021
चलवाणी- 9413970601
rajendrasharmauniraj@gmail.com

वैदिक विज्ञान में ब्रह्म (भगवान्) के सहस्रनाम का रहस्य

आचार्य अरुण कुमार उपाध्याय (IPS Retd.)

1. सहस्रनाम का प्रथम वर्णन

वेद तथा पुराणों में ब्रह्म या भगवान् के अनेक नाम हैं। सहस्र नामों का संग्रह सर्वप्रथम *महाभारत* के अनुशासन पर्व, अध्याय 149 में है, जिसे *विष्णु सहस्रनाम* कहते हैं। ये ऋषियों द्वारा गुणों के अनुसार कहे गये हैं। इसका अर्थ मध्व सम्प्रदाय के राघवेन्द्र स्वामी ने किया है कि *ऋग्वेद* के 1000 सूक्तों के प्रतीक 1000 नाम हैं।

यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः।
ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये॥13॥

गीता में भी कहा है कि वेद में भगवान् का ही वर्णन है—

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यं, वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम् (*गीता*, 15/15)

बलदेव विद्याभूषण (ओड़िशा में बालेश्वर जिला में रेमुना ग्राम में जन्म-रमना शक्तिपीठ-*देवी भागवत पुराण*, 7/30/67) ने अर्थ किया है कि इससे 4 प्रकार के पुरुषार्थ (भूति) की सिद्धि होती है। विष्णु सहस्रनाम के अन्त में स्पष्ट लिखा है कि इसके पाठ से कोई अशुभ नहीं होता, ब्राह्मण को वेद का ज्ञान होता है, क्षत्रिय विजयी होता है, वैश्य धन से समृद्ध होता है, शूद्र सुखी होता है, वाञ्छित फल, यश, समाज में मुख्य स्थान, परम श्रेय मिलता है (*सहस्रनाम*, 122-132)। विष्णु सहस्रनाम मन्त्र मे वेदव्यास ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द, कृष्ण देवता हैं, अमृतांशूद्भव बीज, कृष्ण शक्ति हैं, त्रिसामा (विष्णु सहस्रनाम का एक नाम) हृदय है, जिसकी शान्ति इसका विनियोग (उद्देश्य) है।

ऋषिर्नाम्नां सहस्रस्य वेदव्यासो महामुनिः।
छन्दोऽनुष्टुप् तथा देवो भगवान् देवकीसुतः॥
अमृतांशूद्भवो बीजं शक्तिर्देवकीनन्दनः।
त्रिसामा हृदयं तस्य शान्त्यर्थे विनियुज्यते॥

इसकी भूमिका के अनुसार वेद के 3 अर्थ, महाभारत के 10 अर्थ, तथा विष्णु सहस्रनाम के 100 अर्थ हैं।

त्रयार्थाः सर्व वेदेषु दशार्थाः सर्वभारते। विष्णोः सहस्रनामापि निरन्तर शतार्थकम्॥

सहस्रनाम या वेद में कई नाम एक से अधिक बार हैं, उनके भिन्न अर्थ हैं। प्रति सन्दर्भ कुछ मुख्य अर्थों की चर्चा की जाती है।

2. विविध ब्रह्म के नाम

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
— (*ऋक्*, 1/164/46, *अथर्व*, 9/10/28)

यहाँ अग्नि तथा गरुड के 2-2 उल्लेख हैं।

(1) अग्नि 1-अग्रि या अग्रणी- आगे चलने वाला, नेता-

स यत् अस्य सर्वस्य अग्रं असृज्यत, तस्मात् अग्रिः, अग्रिः ह वै तं अग्निः इति आचक्षते परोऽक्षम्। (*शतपथ ब्राह्मण*, 6/1/1/11, 2/2/42)

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् (*ईशावास्य उपनिषद्*, 18, *ऋक्*, 1/189/1, वाज. यजु, 5/36, 7/43, 40/16 आदि)

= हे अग्रणी या नेता, हमें अच्छे मार्ग से ले चलो।

अग्निं ईळे पुरोहितम् (ऋक्, 1/1/1) = सामने या आगे हित के लिए स्थित अग्नि की उपासना करते हैं। (पुरोहित = सामने रह कर हित करे, वकील, प्रतिनिधि आदि)।

लोकभाषा में इसे अग्रसेन कहते थे। भारत के शासक या नेता को अग्नि कहते थे। वह विश्व का भरण पोषण करता था, अतः इस अग्नि को भरत कहते थे, जिससे इस देश का नाम भारत हुआ।

अग्नेर्महाँ ब्राह्मण भारतेति । एष हि देवेभ्य हव्यं भरति । (*तैत्तिरीय संहिता* 2/5/9/1, *तैत्तिरीय ब्राह्मण3*/5/3/1, *शतपथ ब्राह्मण* 1/4/1/1)

= ब्रह्मा ने अग्नि को महान् कहा था क्योंकि यह देवों को भोजन देता है।

(2) अग्नि 2-सघन ऊर्जा या पदार्थ-आग, वह्नि-धूः असि, धूर्वं तं योऽस्मान् धूर्वति (वाज. यजु, 1/8, *तैत्तिरीय* सं, 1/1/4/1 आदि) = धू धू शब्द कर जलना, ध्वस्त करना।

अग्निः वै ज्योति रक्षोहा (*शतपथ ब्राह्मण*, 7/4/1/34)
अग्निः वा अर्कः (*शतपथ ब्राह्मण*, 2/5/1/4, 10/6/2/5)

तेज रूप में सभी देवता अग्नि हैं-

सर्व देवत्यो अग्निः (*शतपथ ब्राह्मण*, 6/1/2/28)

पृथ्वी (घनीभूत पदार्थ या ऊर्जा)-

इयं पृथिवी हि अग्निः (*शतपथ ब्राह्मण*, 6/1/2/14, 6/1/1/29 आदि)

(3) इन्द्र-सर्वव्यापी-नेन्द्रात् ऋते पवते धाम किञ्चन । (*ऋक्*, 9/69/6)

यह शून्य में भी वर्तमान है, अतः इसे शुनः इन्द्र कहते हैं इस इन्द्र से इद्दर, ईथर (Ether) हुआ है, जो शून्य में भी वर्तमान है।

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रम्। (*ऋक्*, 3/30/22)।

जैसे इन्द्र शून्य में भी है उसी प्रकार कुत्ता खाली घर देख कर उसमें घुस जाता है, अतः उसे श्वान (शुनः) कहते हैं। अकेली स्त्री को देखकर युवक (युवन्) भी उसके पीछे लग जाता है, जैसे इन्द्र गौतम पत्नी को अकेले देख कर उनके घर में घुस गये थे। अतः श्वन्, युवन्, मघवन्-इन 3 शब्दों के रूप एक जैसे चलते हैं- **श्वयुवमघोनामतद्धिते** (*पाणिनि अष्टाध्यायी*, 6/1/33)

सरिस श्वान मघवान जुबानू॥ (रामचरितमानस, 2/301/8)
शुनेव यूना प्रसभं मघोना प्रधर्षिता गौतमधर्मपत्नी।
विचारवान् पाणिनिरेकसूत्रे श्वानं युवानं मघवानमाह॥

इन्द्र सृष्टि निर्माण के लिए ऊर्जा है।

(देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे) इन्द्रियस्य इन्द्रियेण। (*तैत्तिरीय ब्राह्मण*, 2/6/5/3)
इन्द्रस्य इन्द्रियेण अभिषिञ्चामि (*शतपथ ब्राह्मण*, 5/4/2/2, *ऐतरेय ब्राह्मण*, 8/7)

(3-4) मित्र-वरुण-इनके कई अर्थ हैं। जिस ऊर्जा से निर्माण होता है वह मित्र है, जिससे निर्माण नहीं होता वह वरुण है। वरुण वाः (वारि) का क्षेत्र है जहाँ जल जैसा बहुत विरल पदार्थ फैला हुआ है। उसके कुछ भाग में निर्माण होता है, वह मित्र है। आकाश में ब्रह्माण्ड के अप् का क्षेत्र वरुण है। सौर मण्डल के भीतर ऊर्जा का प्रसार मित्र है। आकाश के 3 धामों में मूल स्वरूप अन्तरिक्ष में दीखता है। मूल रूप से आदि हुआ था, अतः इनको आदित्य कहते हैं। स्वयम्भू मण्डल 100 अरब ब्रह्माण्डों का समूह है, जिसके भीतर अन्तरिक्ष (ब्रह्माण्डों के बीच खाली स्थान) अर्यमा है। ब्रह्माण्ड में 100 अरब ताराओं के बीच का स्थान वरुण है। सौर मण्डल का आदित्य मित्र है। ब्रह्माण्ड या ब्रह्माण्ड में तारा संख्या की गणना शतपथ ब्राह्मण (12/3/2/5) में है।

ब्रह्मैव मित्रः (*शतपथ ब्राह्मण*, 4/1/4/1, 5/3/2/4)
मित्रः (एवैनं) सत्यानां (सुवते)। (*तैत्तिरीय ब्राह्मण*, 1/7/4/1)

क्रिया भाग दक्षिण तथा निष्क्रिय भाग वाम हस्त है। अतः मित्र को दक्षिण और वरुण को वाम कहा है।

मैत्रो वै दक्षिणः। वरुणः सव्यः। (*तैत्तिरीय ब्राह्मण*, 1/7/10/1)
अप्सु वै वरुणः (*तैत्तिरीय ब्राह्मण*, 1/6/5/6)

आभिर्वा अहमिदं सर्वं आप्स्यामि यदिदं किं चेति। तस्मादापोऽभवन्। तदपामप्त्वम्। (*गोपथ ब्राह्मण*, पूर्व, 1/1/2)

ता या अमू रेतः समुद्रं वृत्वातिष्ठंस्ताः प्राच्यो दक्षिणाच्यः प्रतीच्य उदीच्यः समवद्रवन्त। तद्यत्समवद्रवन्त तस्मात्समुद्र उच्यते। ता भीता अब्रुवन्। भगवन्तमेव वयं राजानं वृणीमह इति। यच्च वृत्वातिष्ठंस्तद्वरणोऽभवत्। तं वा एतं वरणं सन्तं वरुण इत्याचक्षते परोक्षेण। (*गोपथ ब्राह्मण*, पूर्व, 1/1/7)

सबसे ऊपर अर्यमा-एषा वा ऊर्ध्वा बृहस्पतेः दिक् तदेष उपरिष्टाद् अर्यम्णः पन्थाः। (शतपथ ब्राह्मण, 5/5/1/12)

तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीरुत द्यून्त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम् ।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु ॥ (ऋग्वेद, 2/27/8)

(5-6) सुपर्ण-गरुत्मान्-इनका प्रायः एक साथ प्रयोग है। सुपर्ण इसके अंगों का समन्वय है, गरुत्मान् इसकी क्रिया है।

सुपर्ण चिति मूल बलों के मिलन से बना रूप है। विश्व के 4 मूल बल पक्षी के शरीर कहे गये हैं। इसके 2 पक्ष (पंख) साम्य हैं। विषमता पुच्छ है।

त इद्धाः सप्त नाना पुरुषानसृजन्त। स एतान् सप्त पुरुषानेकं पुरुषमकुर्वन्-यदूर्ध्वं नाभेस्तौ द्वौ समौब्जन्, यदवाङ् नाभेस्तौ द्वौ। पक्षः पुरुषः, पक्षः पुरुषः। प्रतिष्ठैक आसीत्। अथ या एतेषां पुरुषाणां श्रीः, यो रस आसीत्-तमूर्ध्व समुदौहन्। तदस्य शिरोऽभवत्। स एवं पुरुषः प्रजापतिरभवत्। स यः सः पुरुषः-प्रजापतिरभवत्, अयमेव सः, योऽयमग्निश्चीयते(कायरूपेण-शरीररूपेण-मूर्त्तिपिण्डरूपेण-भूतपिण्डरूपेण)। स वै सप्तपुरुषो भवति। सप्तपुरुषो ह्ययं, पुरुषः-यच्चत्वार आत्मा, त्रयः पशुपुच्छानि। (शतपथ ब्राह्मण, 6/1/1/2-6)

विश्व में 3 प्रकार के 7 लोकों का मिलन भी सुपर्ण के 21 पर्ण हैं।

एकविंशतिः हि इमानि प्रत्यञ्चि सुपर्णस्य पत्त्राणि भवन्ति। (*ऐतरेय आरण्यक*, 1/4/2)

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः॥ (*अथर्व, शौनक संहिता*, 1/1/1)

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः। देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्। (*पुरुष सूक्त, यजुर्वेद*, 31/15)

सुपर्ण रूप 1, 2 या 3 हैं-

एकः सुपर्णः स समुद्रमाविवेश स इदं भुवनं वि चष्टे। (*ऋक्*, 10/114/4)
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति, अनश्नन्नन्यो अभिचाकषीति॥
(*मुण्डक उप.* 3/1/1, *श्वेताश्वतर उप.* 4/6, *ऋक्* 1/164/20, *अथर्व* 9/9/20)

(इनमें एक सुपर्ण निर्विशेष ब्रह्म है, अन्य कर्त्ता ब्रह्म है। व्यक्ति स्तर पर ये आत्मा-जीव हैं।

ऋग्वेद (10/114) त्रिसुपर्ण सूक्त है। तैत्तिरीय आरण्यक, अनुवाक् (38-40) भी त्रिसुपर्ण सूक्त है।तीन सुपर्ण गायत्री मन्त्र के 3 पादों की तरह हैं। प्रथम पाद में सृष्टि होती है, जो 7 अंगों वाले गरुड़ के विभिन्न स्तरों द्वारा होता है। द्वितीय पाद में युग्म सुपर्णों द्वारा सृष्टि क्रिया चलती है, वह पालनकर्ता विष्णु का वाहन हुआ। तृतीय पाद आकाश की सृष्टि तथा उसकी क्रियाओं का मनुष्य पर प्रभाव है। यह प्रभाव पहले मन पर होता है जिसे वेद में धीयोग कहा गया है। मन से बाकी शरीर नियन्त्रित होता है। यह त्रिसुपर्ण है, जिसका मेधा जनन के लिये प्रयोग होता है। मेधा के 3 स्तर हैं-मन, बुद्धि तथा उसका स्थान चित्त आकाश।

गरुड गतिशील रूप है, जिसे विष्णु का वाहन कहा गया है। इसकी गति को छन्द कहा गया है-

छन्दोमयेन गरुड़ेन समुह्यमानश्चक्रायुधोभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः।
— (गजेन्द्र मोक्ष, *भागवत पुराण*, 8/3/31)

छन्द रूपी गरुड़ को वयः छन्द या मूर्धा वयः छन्द कहा गया है (*वाजसनेयि संहिता*, 15/4-5)। छन्द माप है। काव्य में अक्षर माप, दूरी, गति या काल की माप तथा मात्रा की माप भी छन्द हैं। गायत्री पृथ्वी तथा उससे बड़े लोकों की माप है, जो मनुष्य से आरम्भ कर क्रमशः 1-1 कोटि अर्थात् 2 घात 24 गुणा बड़े हैं (गायत्री 24 अक्षर का छन्द है)। एक सामान्य समुद्र में जल विन्दुओं की संख्या 10 घात 14 है, अतः इस संख्या को समुद्र या समुद्रिय छन्द कहते हैं। मनुष्य की तुलना में पृथ्वी का भार 2 घात 80 है, अतः अशीति का अर्थ 80 तथा भोजन है। काल माप-महिदास ऐतरेय को उद्धृत कर *छान्दोग्य उपनिषद्* (3/16/1-7) में कहा है कि जीवन यज्ञ को उसने 3 सवन में विभाजित कर 116 वर्ष की आयु प्राप्त की। (1) प्रथम सवन गायत्री के 24 अक्षर अनुसार 24 वर्ष तक प्राण का विकास किया, (2) द्वितीय माध्यन्दिन सवन त्रिष्टुप् (11×4 अक्षर) में प्राणों से परिश्रम कर रोया, रोने वाला रुद्र = 11। (3) तृतीय सवन जगती (12×4 = 48 अक्षर) 68 वर्ष के बाद आदित्य (12) रूपी प्राणों का रक्षण करता है।

गरुड़ का प्रभाव क्षेत्र तथा उससे प्राप्त बुद्धि वाक् सुपर्णी है-सुपर्णी (माया) वागेव सुपर्णी। (शतपथ ब्राह्मण, 3/6/2/2)

महर्षि दैवरात् ने वाक् सुधा (पृष्ठ 290) में सुपर्णी वाक् के 3 खण्ड कहे हैं जो त्रिसुपर्ण का एक अर्थ है—

सौपर्णी परसंज्ञया सुरसरित् सा वाक् सुपर्णी त्रिधा, वर्णाभ्यां डयते सुपर्ण इव सा माता सुपर्णाभिधा।
चिज्ज्योतिः सुहिरण्यरूपतनुभृत् सत्त्वात्मसौपर्णिका, पञ्चाशीह षडुत्तराऽतति मनः प्राणात्मचित्कर्षिका॥26॥

(7) मातरिश्वा-मातरिश्वा-अप् में पदार्थों के मिश्रण के लिए गति आवश्यक है, जिससे नया निर्माण है। इस गति या वायु से माता जैसा निर्माण होता है, अतः इसे मातरिश्वा वायु कहते हैं।

तस्मिन् अपो मातरिश्वा दधाति (*वाज. यजु*, 40/4, *ईशावास्य उपनिषद्*, 4)
यावन् मात्रं उषसो न प्रतीकं सुपर्ण्यो वसते मातरिश्वः (*ऋक्*, 10/88/19)

(8) यम-विष्णु सहस्रनाम में यम (162) नियम (864) तथा अयम (866) नाम हैं। ऋग्वेद में यम सूक्त (10/14), तथा पितर सूक्त (10/15) हैं। अथर्व वेद, काण्ड 18 में 4 बड़े सूक्त पितृमेध हैं, जिनमें 283 मन्त्र हैं।

पृथ्वी पर विवस्वान् (सूर्य,11वें व्यास) के 2 वंशज थे-भारत के सूर्य वंशी तथा भारत के वरुण खण्ड (इराक-अरब) की पश्चिम सीमा पर यम थे (यमन, अम्मान, सना-संयमनी आदि-मत्स्य पुराण, 124/20-32)। वहाँ के यम के पास नचिकेता ज्ञान के लिए गया था (*कठोपनिषद्*, वल्ली 1/1)। ब्रह्म रूप में अर्थ-

(क) सृष्टि का लय रूप-जन्माद्यस्य यतः (ब्रह्म सूत्र, 1/1/2)-जिससे जगत् का जन्म, वृद्धि, क्षरण, मृत्यु आदि हो वह यम है। सृष्टि के आरम्भ में एक ही ऋषि था जिसे पूषा (पोषण करने वाला) या अत्रि (जिसका 3 में विभाजन नहीं हुआ है) कहते थे। स्रोत रूप ब्रह्म सूर्य है (*विष्णु सहस्रनाम*, 883), परिणति या अन्त रूप यम है। सूर्य से यम रूप तक की सृष्टि क्रिया (प्राजापत्य) एकर्षि पूषा से होती है।

पूषन् एकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूहरश्मीन् समूह। (*ईशावास्य उपनिषद्*, 16)

सौर मण्डल में सौर वायु इषा है (*वाज. यजु*, 1/1), इषा-दण्ड की परिधि 9,000 योजन या सौर व्यास है (यूरेनस कक्षा तक- विष्णु पुराण, 2/8/3)। वह अन्धकार भाग यम है। प्रकाशित भाग शनि धर्म है। शनि वलय के 3 क्षेत्रों को पीलुमती, उदन्वती तथा प्रद्यौ कहा गया है-उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा। तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते॥ (*अथर्व* 18/2/48)।

(ग) नियन्ता-नियन्ता (5) नियमो (7) यमः (*सहस्रनाम*, 105)। ब्रह्म का ईश्वर रूप सभी भूतों के हृदय में रह कर नियन्त्रण करता है-

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ (*गीता*, 18/61)

नियन्त्रण के नियम भी वही बनाते हैं। विकल्प से अनियम का अर्थ है कि वह स्वयं किसी नियम से बन्धे नहीं है। योग सूत्र (2/30-34) के अनुसार 5 यम निषेध रूप हैं, 10 नियम पालन रूप हैं।

(घ) पितर रूप-पितर का सामान्य अर्थ है माता-पिता। व्यापक अर्थ में सभी पूर्वज पितर हैं। सभी भूतों के उत्पत्ति स्रोत पितर हैं जो 50 से अधिक प्रकार के हैं।

ऋषिभ्यः पितरो जाताः, पितृभ्यो देव-दानवाः (*मनुस्मृति*, 3/201)।

(ङ) मृत पितर-मृत्यु के बाद कई प्रकार के पितर होते हैं, उन्हीं से पुनः जन्म होता है। उदाहरण-

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम॥6॥

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम्॥7॥ (*ऋक्*, 10/14)

3. जगन्नाथ रूप-

तत्र गत्वा जगन्नाथं वासुदेवं वृषाकपि। पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहिताः॥
— (*भागवत पुराण*, 10/1/20)

इसमें 4 नाम हैं-जगन्नाथ, वासुदेव, वृषाकपि, पुरुष।

(1-2) जगन्नाथ-विष्णु-सुप्त रूप विष्णु तथा जाग्रत रूप जगन्नाथ है। *दुर्गा सप्तशती*, अध्याय 1-

निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः॥71॥
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च॥84॥
विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ॥90॥

जाग्रत् होने के बाद—

उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तत्या मुक्तो जनार्दनः॥91॥
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु॥86॥

सूर्य जीवन का आधार रूप में विष्णु का रूप है। यह आकर्षण द्वारा पृथ्वी को अपनी कक्षा में धारण किये हुए है। यह विष्णु रूप है। उससे जो किरण तथा तेज निकलता है, वह इन्द्र है। किरणों द्वारा यह जीवन का पालन करता है वह जाग्रत् रूप या जगन्नाथ है।

(3) विश्वनाथ-लोकभाषा में जगत् तथा विश्व समान हैं। किन्तु विष्णु को जगन्नाथ, तथा शिव को विश्वनाथ कहते हैं। वेद विज्ञान में इनके अलग अर्थ हैं। विश्व वह रचना है जो एक सीमा के भीतर प्रायः पूर्ण है तथा हृदय केन्द्र से संचालित है। इसका संचालक चेतन तत्त्व जगत् है जो अव्यक्त या अदृश्य है।

जगदव्यक्तमूर्तिना (*गीता* 9/4) जगज्जीवनं जीवनाधारभूतं (*नारद परिव्राजक उपनिषद्* 4/50)
वालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्ये विश्वं देवं जातरूपं वरेण्यं (*अथर्वशिर उपनिषद्* 5)

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशैः ॥ (*श्वेताश्वतर उपनिषद्*, 5/13)

(4) वासुदेव-सूर्य सिद्धान्त (12/12-25) में पाञ्चरात्र, सांख्य, पुराण तथा वेद समन्वित सृष्टि क्रम है। हिरण्यगर्भ से पहले वासुदेव हुए। उसके बाद क्रम से संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध हुए। यह *भागवत पुराण* में भगवान् कृष्ण, उनके भाई, पुत्र तथा पौत्र के भी नाम हैं। पर इस वर्णन से लगता है कि सृष्टि का आधार प्रथम उत्पन्न आकाश ही वासुदेव रूप है। वास = रहने का स्थान। संकर्षण = परस्पर आकर्षण। आकर्षण के केन्द्र के रूप में स्वयं वासुदेव ही कृष्ण हैं। पर सम् उपसर्ग का अर्थ है सभी पिण्डों के आकर्षण का योग। परस्पर आकर्षण द्वारा ही ब्रह्माण्ड, ग्रह, नक्षत्र आदि रूपों में पदार्थ एक सीमा के भीतर गठित हुआ। प्रद्युम्न = प्रकाशित या तेज का स्रोत। यह स्पष्ट रूप से सूर्य को कहा गया है जो तेज के कारण संसार की आत्मा है और त्रयी रूप में ऋक् (पिण्ड), यजु (जीवन), साम (तेज) तथा आधार (अथर्व) है। उसके बाद विविध सृष्टि अनिरुद्ध है जो अनन्त प्रकार की है। इसका विभाजन 12 प्रकार के आदित्यों से हुआ।

(5) वृषाकपि- पण्डित मधुसूदन ओझा ने *इन्द्र विजय*, अध्याय 3 में वृषाकपि को इन्द्र का मित्र असुर राज कहा है, जो एक साथ मद्यपान करते थे (*ऋक्* सूक्त, 10/86)। ब्रह्म रूप में वृषा को इन्द्र, सूर्य, हिङ्कार या व्यक्ति रूप में मन, आत्मा कहा है।

इन्द्रो वृषा (शतपथ ब्राह्मण, 1/4/1/33)
समग्निरिध्यते वृषा (*ऋक्*, 3/27/13)-*शतपथ ब्राह्मण* (1/4/1/29)

वृषा अग्नि रूप स्रष्टा है, उसका स्थान या वेदी योषा (स्त्री) है—

योषा वै वेदिः वृषा अग्निः (*शतपथ ब्राह्मण*, 1/2/5/15)
वृषा हि मनः (*शतपथ ब्राह्मण*, 1/4/4/3)

वृषा हिङ्कारः (*गोपथ ब्राह्मण*, पूर्व, 3/23)-सृष्टि का आरम्भ ब्रह्म के विभिन्न रूपों द्वारा होता है- कामना (निर्विशेष ब्रह्म-सो अकामयत्-तैत्तिरीय उपनिषद्, 2/6, *बृहदारण्यक उपनिषद्*, 1/2/4), ईक्षा (सृष्टि इच्छा-स इक्षांचक्रे-*प्रश्नोपनिषद्*, 6/3, स ईक्षत-*ऐतरेय उपनिषद्*, 1/3), हिङ्कार (कार्य आरम्भ या प्रस्ताव-*छान्दोग्य उपनिषद्*, अध्याय 2 में विविध हिङ्कार)।

सृष्टि का आरम्भ जल जैसे विरल पदार्थ से हुआ, जिसका मूल रूप रस या आनन्द था। उसमें तरंग होने से सलिल् हुआ, उसका आकार ग्रहण करने से सरिर् (शरीर) हुआ। उसमें द्रप्स (अंग्रेजी में ड्रॉप्स, drops) अलग (स्कन्न) हुए। प्रथम स्तर के द्रप्स ब्रह्माण्ड (गैलेक्सी), उसमें तारा रूप द्रप्स हुए। ब्रह्माण्ड में फैला पदार्थ अप् था, उसमें तरंग होने से अम्भ हुआ, अम्भ सहित साम्भ या साम्ब सदाशिव हुआ। सौर मण्डल में अप् का रूप मर है, जिसमें सूर्य मरीची है।

यद्वै तत्सुकृतं रसो वै सः । रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति। (*तैत्तिरीय उपनिषद्*, 2/7)
वेदिर्वै सलिलम् (*शतपथ ब्राह्मण*, 3/6/2/5)

अयं वै सरिरो योऽयं वायुः पवत एतस्माद्वै सरिरात् सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि सहेरते (*शतपथ ब्राह्मण*, 14/2/2/3)

स इमाँल्लोकनसृजत । अम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठान्तरिक्षं मरीचयः पृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः । (*ऐतरेय उपनिषद्*, 1/1/2)

कर्म के आरम्भ रूप अप् के सभी रूप 'क' हैं। 'क' का पान करने वाला कपि, उसके बाद ब्रह्माण्ड रूपी विन्दुओं की वर्षा करने वाला वृषाकपि है।

तद् यत् कम्पाय-मानो रेतो वर्षति तस्माद् वृषाकपिः, तद् वृषाकपेः वृषा कपित्वम्। ... आदित्यो वै वृषाकपिः। (*गोपथ ब्राह्मण*, उत्तर, 6/12)

द्रप्सश्चस्कन्द प्रथमाँ अनु द्यूनिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः॥ (*ऋक्*, 10/17/11, *वाज. यजु*, 13/5)

यस्ते द्रप्सः स्कन्दति॥12॥ (*ऋक्*, 10/17/12)

एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूपो इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः (*ऋक्*, 6/41/3)

यह सृष्टि सदा पहले जैसी होती है, अतः अनुकरण करने वाले जीव को कपि (अंग्रेजी में कॉपी, copy) कहते हैं।

सूर्या चन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् । (*ऋक्*, 10/190/3)

(6) पुरुष-(क) सांख्य दर्शन के अनुसार सृष्टि का चेतन तत्त्व पुरुष है, निर्माण सामग्री प्रकृति है, जिसके 24 भेद हैं।

(ख) *गीता* के अनुसार सभी भूत पुरुष हैं, जिसके 4 प्रकार हैं। उनमें 3 का वर्णन हो सकता है। सभी का बाह्य रूप क्षर पुरुष है, उनका परिचय या कार्य रूप अक्षर पुरुष है, समष्टि के अंग रूप अव्यय पुरुष है।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥16॥
उतमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः। यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्यव्यय ईश्वरः॥17॥

समष्टि रूप में व्यय या कमी नही होती है, जिसे आधुनिक भौतिक विज्ञान में 5 प्रकार के संरक्षण सिद्धान्त कहा गया है। (Conservation of mass, energy, momentum, angular momentum, electric charge)

अति सूक्ष्म या अति विस्तृत रूप में भेद नहीं दीखता या अनुभव नही होता है (*भागवत पुराण*, 3/11/3-5), वह परात्पर पुरुष है। इसका वर्णन सम्भव नहीं है, उपवर्णन होता है।

अणोरणीयान् महतो महीयान् (*कठोपनिषद्*, 2/20)
स वै न देवासुर मर्त्य तिर्यङ् न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः।
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्, निषेधशेषो, जयतादशेषः॥
एवं गजेन्द्रमुपवर्णित निर्विशेषं (*गजेन्द्र मोक्ष, भागवत पुराण*, अध्याय, 8/3)

(ग) पुरुष सूक्त में इसके सभी रूप वर्णित हैं अतः उसी सूक्त से उनकी उपासना हुई। पुरुष सूक्त के कुछ रूपों के क्रम हैं-(1) पूरुष = 4 पाद का मूल स्वरूप, (2) सहस्रशीर्ष-उससे 1000 प्रकार के सृष्टि विकल्प या धारा, (3) सहस्राक्ष =हर स्थान अक्ष या केन्द्र मान सकते हैं, (3) सहस्रपाद-3 स्तरों की अनन्त पृथ्वी, (4) विराट् पुरुष-दृश्य जगत् जिसमें 4 पाद में 1 पाद से ही सृष्टि हुई। 1 अव्यक्त से 9 प्रकार के व्यक्त हुए जिनके 9 प्रकार के कालमान सूर्य सिद्धान्त (15/1) में दिये हैं। अतः विराट् छन्द के हर पाद में 9 अक्षर हैं। (5) अधिपूरुष-दृश्य पिण्डों के बीच का विरल पदार्थ जो उनका 3 गुणा है, (6) देव, साध्य, ऋषि आदि, (6) 7 लोक का षोडषी पुरुष, (7) सर्वहुत यज्ञ का पशु पुरुष, (8) आरण्य और ग्राम्य पशु, (9) यज्ञ पुरुष (10) अन्तर्यामी आदि।

पुरुष की सभी परिभाषा मधुसूदन ओझा जी ने श्लोकों में दी हैं-

पुरु व्यवस्यन् पुरुधा स्यति स्वतस्ततः स उक्तः पुरुषश्च पूरुषः।
पुरा स रुष्यत्यथ पूर्षुरुच्यते स पूरुषो वा पुरुषस्तदुच्यते।
धी प्राणभूतस्य पुरे स्थितस्य सर्वस्य सर्वानपि पाप्मनः खे।
यत्सर्वतोऽस्मादपि पूर्व औषत् स पूरुषस्तेन मतोऽयमात्मा॥
स व्यक्तभूते वसति प्रभूते शरीरभूते पुरुषस्ततोऽसौ।
पुरे निवासाद्हरादिके वा वसत्यतं ब्रह्मपुरे ततोऽपि॥
(*ब्रह्म सिद्धान्त*, 11/172-174)

4. स्रष्टा और सृष्टि रूप

यह रूप दारु ब्रह्म भी कहा गया है। भगवान् सृष्टि क्रम रूप में वृक्ष का मूल, शाखा और पत्र हैं, निरपेक्ष द्रष्टा हैं, विश्व निर्माण की सामग्री हैं, सृष्टि चक्र या संकल्प-कर्म-फल का चक्र हैं, कई चक्रों के समन्वय रूप में वन तथा विश्व के आधार भी हैं।

ब्रह्म वनं ब्रह्म स वृक्ष आसीत् यतो द्यावा पृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा विब्रवीमि वो ब्रह्माध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्॥
(*तैत्तिरीय ब्राह्मण*, 2/8/9/16)

= ब्रह्म ही वह वन और वृक्ष है जिसे काट कर जगत् का निर्माण हुआ। मनीषी चिन्तन कर कहते हैं कि ब्रह्म ने ही भुवनों का धारण किया।

यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चित्, यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्॥ (*श्वेताश्वतर उपनिषद्*, 3/9)

= पूर्ण पुरुष वृक्ष के जैसा आकाश में स्तब्ध हो कर देख रहा है। इससे परे कुछ नहीं है, इससे सूक्ष्म नहीं है न इसके अतिरिक्त कुछ है।

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्। (*गीता*, 15/1)

= जिसका मूल ऊपर है तथा शाखा नीचे है वह अविनाशी अश्वत्थ है। छन्द इसके पत्ते हैं। जो इस वृक्ष को जानता है, वही वेद जान सकता है।

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके॥2॥
न रूपमस्येह तथोपलभ्यते, नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढ़मूलमसङ्गशस्त्रेण दृढ़ेन छित्वा॥3॥

= संकल्प, क्रिया, फल के चक्र रूपी वृक्ष का जो बन्धन है, उसे काटने पर ही मनुष्य मुक्त हो सकता है।

अदो यद्दारुः प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम्।
तदारभस्व दुर्हणो येन गच्छ परस्तरम्॥
(*ऋक्, शाकल्य शाखा*, 10/155/3)

= यह समुद्र (विश्व विस्तार) के पार जो अपौरुषेय दारु (काठ) तैर रहा है, उसकी शरण में जाने से ही समुद्र को पार कर सकते हैं।

5. गायत्री मन्त्र-

एको नैकः सवः कः किं यत् तत् पदमनुत्तमम् (*सहस्रनाम*, 91)

गायत्री प्रथम पाद में सविता = स्रष्टा। यह सविता सूर्य पिता जैसा है। उसका निर्माता ब्रह्माण्ड पितामह है, उसका भी निर्माता स्वयम्भू ब्रह्म प्रपितामह, या तत् सविता है।

गायत्री मन्त्र तृतीय पाद में यत् = स्वयं, व्यक्ति। उसकी बुद्धि को प्रेरित करने वाला ब्रह्म।

मध्यम पाद में भर्गः भी ब्रह्म का वाचक है, जो शिव का एक नाम है (*अमरकोष*, 1/1/33)

एको नैकः(*देव्यथर्वशीर्ष*, 23)

कः = कर्ता रूप या स्रष्टा-कस्मै देवाय हविषा विधेम (*ऋक्*, 10/121/1)
कं = क्रिया रूप, सृष्टि-कं लोकं अनुप्राविशत् (*अथर्व*, 11/8/11)

C-47 Palaspalli,
P.O. Bhuvaneswar (Orrissa)
Pin. 751020
Mob. 9437034122.

The Divinity of Rāma: A Theological Study of the *Rāma-Rahasya Upaniṣad*

Dr. Subhrajit Sen & Dr. Lokesh Mondal

Abstract:

This paper explores the theological and spiritual dimensions of the *Rāma-Rahasya Upaniṣad,* one of the later *Vaiṣṇava Upaniṣads* associated with the *Atharvaveda* and included within the Muktikā canon. The study examines the Upaniṣad's presentation of Lord Rāma as the Supreme Brahman, the embodiment of Sat-Cit-Ānanda, and the ultimate source of liberation. Through an analysis of its historical background, doctrinal structure, mantra theology, and symbolic spirituality, the paper highlights the synthesis of Vedāntic philosophy and devotional bhakti within the text. The dialogue between the sages and Hanumān reveals the esoteric nature of Rāma-tattva and establishes devotion to Rāma as a direct path to mokṣa. The study further investigates the significance of the Rāma-mantra, tantric elements, nyāsa practices, and the identification of various Hindu deities and epic characters as manifestations of Rāma. Special attention is given to the symbolic interpretation of Sītā, Lakṣmaṇa, Bharata, and Hanumān within the spiritual framework of self-realization and divine surrender. The paper argues that the Upaniṣad transforms the worship of Rāma into a comprehensive theological and mystical discipline that harmonizes jñāna, bhakti, and dhyāna. Ultimately, the Rāma-Rahasya Upaniṣad emerges as a significant text of devotional Vedānta that reinterprets the Rāma tradition through metaphysical and spiritual perspectives.

Keywords:

Rāma-Rahasya Upaniṣad; Rāma; Vaiṣṇava Upaniṣads; Vedānta; Bhakti; Brahman; Rāma-mantra; Mokṣa; Sat-Cit-Ānanda; Hanumān; Tantra; Nyāsa; *Atharvaveda*; Rāma-tattva; Devotional Theology.

1). Introduction

The *Rāma-Rahasya Upaniṣad* is one of the minor Upaniṣads associated with the Vaiṣṇava tradition and is particularly devoted to the worship and metaphysical significance of Lord Rāma. It belongs to the group of sectarian Upaniṣads that developed devotional (bhakti) spirituality while preserving the philosophical depth of the Vedānta tradition. The term 'Rahasya' means "secret" or 'mystery', indicating that the text reveals the esoteric spiritual truth of Rāma-tattva.

The *Rāma-Rahasya Upaniṣad* is composed in the Sanskrit language. This Upaniṣad is one of the 31 Upaniṣads specifically associated with the *Atharvaveda*[1]. Furthermore, it is classified as one of the 14 Vaishnava Upaniṣads within the Muktika canon. We also encounter another version of the*Rāma-Rahasya Upaniṣad*wherein the sons of Brahma, such as Sanaka and others, approach Brahma to inquire about the ultimate truth (Tattva) -

'चिदानन्दरसं ब्रह्म किं वदन्ति? व्यापकतया जगद्व्याप्य तिष्ठति यत्तद्ब्रह्म वदन्तितराम् । आपद्यमानोऽस्ति प्रकृतिं पुरुषः। कस्मात्समुत्पन्ना भवन्ति ? तेषां लोका अलोकाः कियत्प्रमाणाः?'[2] Brahmareplied: 'मुखाच्छ्रुतोऽयं धर्मः। शृणुत सर्वा यैषा सृष्टिस्समुद्यते । .....पुरुषोत्तमसंज्ञितो भक्तिगम्य आनन्दमयो लोकः संविराजते । ..... सा भक्तिस्त्रिविधैव भवति। एका कर्ममिश्रिता देवानामृषीणामुपासकानां भवतितराम्। श्रवणकीर्तनस्मरणवन्दनसेवनोपकरणदास्यभावेनात्मसमर्पणम् । ते जीवा भक्तिमार्गीया एवैते ।....."[3]

The another name of the Upaniṣad is *RasikānandaUpaniṣad*.

The *Rāma-Rahasya Upaniṣad*is an Upaniṣad composed in a later period (the modern era). It is dedicated to the Hindu deity Rāma. This Upaniṣad is presented as being spoken by Hanumān. In this text, it is asserted that Rāma and the supreme immutable truth, Brahman, are identical and that He is the essence of all the primary deities. Rāma is considered Sat-Chit-Ananda (Existence-Consciousness-Bliss) and the means for attaining liberation. This Upaniṣad also contains a Tantric section, which mentions the Bija Mantra of Rāma. There are five chapters in this Upaniṣad.

2). History :

The composition date and the author of the work titled *Rāma-Rahasya Upaniṣad* remain unknown to this day. Moriz Winternitz suggests that this Upaniṣad

was composed around the same time as other Rama-centric Upaniṣads. According to Professor Catherine Ludvik of Stanford University, the *Rāma-Rahasya Upaniṣad*was written in the 17th century AD.[4]

The *Rāma-Rahasya Upaniṣad* is traditionally presented as a divine teaching narrated by Hanumān to sages such as Mudgala and Śāṇḍilya. No specific human author is mentioned, as the text is regarded as a revealed spiritual scripture connected with the Rāmāyaṇa tradition[5].

Scholars generally place its composition between the 14th and 16th centuries CE. The Upaniṣad belongs to the later Vaiṣṇava Upaniṣads associated with the *Atharvaveda* and combines Advaita Vedānta philosophy, bhakti devotion to Rāma, and Tantric elements. It emerged during the medieval bhakti movement, especially in North India.

According to Ramdas Lamb, not much specific information is available regarding this Upaniṣad, and it is considered quite distinct from other Rama-centric Upaniṣads. Both the Rāma-Rahasya Upaniṣad and the *Rāma-Tāpanīya Upaniṣad*discuss Rāma as an incarnation of Lord Vishnu. Consequently, these two are designated as Vaishnava Upaniṣads. This particular Upaniṣad is included in the list of 123 Upaniṣads compiled by the Christian missionary J. N. Farquhar in British India. The *Rāma-Rahasya Upaniṣad*, along with other Rama-centric Upaniṣads and the 12th-century Rama-centric Pāñcarātrascripture, the *Agastya-Saṃhitā*, are particularly influenced by Vedanta philosophy.[6] In the *Muktika Upaniṣad*, published in the Telugu language, which contains a list of 108 Upaniṣads presented as Rāma's instructions to Hanumān, this particular Upaniṣad is ranked as number 54. However, it is not mentioned in the list of 52 Upaniṣads popular in North India compiled by Colebrooke. Similarly, this Upaniṣad is absent from the collection of Upaniṣads popular in South India published by Narayana in the *'Bibliotheca Indica'*[7] series.Paul Deussen has noted that the first chapter of this Upaniṣad is also known as the '*Hanumadukta-Ramopanishad.*'[8]

3). Subject Matter

The *Rāma-Rahasya Upaniṣad* consists of five chapters and begins and ends with peace chants (śānti mantras). It is written in a dialogue form between sages and Hanumān.

The text gradually explains the greatness of Rāma, Rāma mantras, meditation methods, yantras, nyāsa, and japa rituals. The final chapter discusses the hidden spiritual meaning of the Rāma mantra and its power to purify sins and grant liberation.

The Upaniṣad is essentially composed in the form of a dialogue between Hanumānand the sages. The sages approach Hanumān seeking true spiritual knowledge, and he answers their questions with wisdom and insight.[9] He states that Rama is the Supreme Truth, Brahman, and the Atman (Self). It is through him alone that Moksha (liberation) can be attained.[10] According to this Upanishad, Rāmā's wife, Sītā, is the cause of creation, a supreme example of a completely self-absorbed state (samadhi), and the ideal devotee of Rāmā. According to Lamb's translation, Rāmā and Sita are collectively the source of all creation.

According to this Upaniṣad, Rāmā and all major Hindu deities are essentially one and identical. According to Dalal, a researcher of Vaishnava Upaniṣads, other deities are described in this text as being 'limbs' (parts or manifestations) of Rāmā. These include Gaṇeśa, Sūrya, Candra, and other incarnations of Viṣṇu such as Nārāyaṇa, Narasiṃha, Vāsudeva, and Varāha.

Various characters from the Hindu epic *Rāmāyaṇa*, specifically Lakṣmaṇa, Śatrughna, Bharata, and Vibhīṣaṇa are also described as limbs of Rāmā. Furthermore, this Upaniṣad mentions Sarasvatī (the goddess of knowledge and arts) and Durgā, (the fierce form of the mother-power Pārvatī as incarnations of Rāmā. He is declared to be the symbol of the Supreme Truth and the Praṇava (Oṃkāra).

Hanumān has spoken about the significance of chanting Rāma's six-syllable mantra: *Rāṁrāmāyanamaḥ*. According to Professor Lamb, in the thirteenth verse of the first chapter, Hanumān tells Vibhīṣaṇa that constant chanting of the Rāma name mantra provides liberation from grave sins such as patricide, matricide, the killing of a guru, or the killing of a Brahmin. This Upaniṣad also advises the reading of the *RāmaGītā*.

Furthermore, the Upaniṣad provides explanations for various other mantras, noting their Tantric powers and mentioning their respective *Bija Mantras*. While all these mantras are related to *Rāma*, each serves a different role. The number of syllables in these mantras' ranges from one to fourteen. Two such examples are:

Oṁrāmāyahūṁphaṭsvāhā and
Oṁśrīṁrāmaṁdāśarathāyasītāvallabhāyasarvabhītadāyanamaḥ.

In Lamb's view, the mantras containing between two and six syllables are the most effective. However, Madhavan, a critic of Vaishnava Upaniṣads, notes that the greatness of the eight-syllable mantra *śrīrāmaḥśaraṇaṃ mama*is highlighted in this text. According to this Upanishad, the single-syllable 'Rām' (रां) mantra represents the supreme truth, Brahman, while the two-syllable 'Rāma' (राम) mantra is the giver ofliberation.

This Upaniṣad contains several verses regarding the meditation (dhyana) of Rāma. Professor Dalal has stated that the secret (rahasya) or the hidden mystery of Nyasa (ritual touching of body parts) mentioned in this Upaniṣad involves chanting the Rāmā mantra while touching various parts of the body. Furthermore, according to another scholar of Vaishnavite literature, Dodiya, the *Bija Mantra* 'Rām' (राम्) mentioned in this Upaniṣad is composed of three constituent letters: 'R' (र), 'Aa' (आ), and 'M'[11] (म्).

Philosophical Symbolism of the Rāma Mantra: -

In the *Rāma-Rahasya Upaniṣad,* the Rāma mantra is explained as a deep spiritual and philosophical symbol representing the non-dual nature of Brahman, the Supreme Reality. The two syllables 'Rā' and 'Ma' are interpreted symbolically. 'Rā' represents fire, light, and the eternal Puruṣa (Supreme Consciousness), while 'Ma' symbolizes Māyā and Prakṛti, the creative power of the universe. Together, these syllables express the unity of consciousness and creation, forming *Sat-Cit-Ānanda* (Existence, Consciousness, and Bliss), which is identified with Brahman.

The mantra is also connected with the famous Mahāvākya'Tat Tvam Asi' ('Thou art That') from the *Chāndogya Upaniṣad*. In this interpretation, "Rā"

signifies 'Tat' (the Absolute Reality) and 'Ma' signifies 'Tvam' (the individual self). Their union expresses the identity of the individual soul with Brahman. Thus, chanting the Rāma mantra becomes a spiritual means for realizing the oneness of the self and the Supreme.

The Upaniṣad further praises the mantra 'ŚrīRāmaḥŚaraṇaṃ Mama' as a highly powerful form of devotion and surrender. It is considered equal in spiritual power to the sacred Praṇava (Oṃ). Through constant repetition (japa) and meditation, the devotee overcomes ignorance and Māyā, realizes the formless Brahman, and attains mokṣa (liberation). In this way, the Rāma mantra is presented not only as a devotional chant but also as a profound path to self-realization and spiritual awakening.

In describing the evolutionary relationship of the mantra, it is asserted that the letter 'R' is the incarnation of Sat-Chit-Ananda (Existence-Consciousness-Bliss). 'R' is eternal and, therefore, beyond Māyā (Mayatita); it represents the immutable essence of Brahman. The letter 'Aa' represents the Swarupa (nature or form) and is influenced by Māyā (Mayavishishta). 'Rām' is the seed of the Rama mantra; consequently, in Dodiya's view, it represents Brahman qualified by Māyā.[12]

The Divinity of Rama: A Theological Study:

Spiritually, the Upaniṣad presents Rāma not merely as the heroic prince of Ayodhyā but as the Supreme Brahman (Parabrahman), the ultimate reality underlying the universe. The text identifies the name Rāma with the eternal, infinite consciousness that transcends all dualities. Thus, devotion to Rāma becomes a direct means of realizing the Absolute Truth.

One of the central spiritual teachings of the Upaniṣad is the power of the Rāma-mantra. The sacred name Rāma is regarded as a tāraka-mantra—a liberating mantra capable of delivering the soul from the bondage of saṃsāra. The repetition (japa) and meditation upon the divine name purify the mind, destroy ignorance, and awaken divine consciousness within the devotee. The text suggests that the divine name itself embodies the presence of God.

The Upaniṣad also emphasizes the unity of jñāna (knowledge), bhakti (devotion), and dhyāna (meditation). True spiritual realization is attained not merely through intellectual inquiry but through loving devotion combined with inner contemplation. In this way, the text harmonizes Vedāntic non-dualism with personal devotion to God.

Another important spiritual aspect is the symbolic interpretation of Rāma and His associates. Rāma represents the Supreme Self, Sītā symbolizes divine energy (śakti) or compassion, Lakṣmaṇa signifies disciplined intellect and service, while Hanumān embodies perfect devotion and surrender. Thus, the narrative elements become inner spiritual symbols guiding the aspirant toward self-realization.

The Upaniṣad teaches that liberation (mokṣa) is attained through complete surrender to Rāma. The devotee who constantly remembers and meditates upon Rāma transcends fear, sorrow, karma, and rebirth. Spiritual life according to this text is therefore grounded in purity, devotion, self-control, and unwavering remembrance of the Divine.

In conclusion, the *Rāma-Rahasya Upaniṣad* occupies a significant place in devotional Vedānta. It transforms the worship of Lord Rāma into a profound spiritual discipline aimed at realizing the Supreme Reality through mantra, meditation, devotion, and inner awakening.

Scholars consider the *Rāma-Rahasya Upaniṣad* to be a combined work of Advaita Vedānta philosophy, Vaiṣṇava bhakti devotion, and Tantric practices. It presents difficult Vedāntic ideas in a simpler and more devotional form so that ordinary people can understand them easily. Researchers have observed similarities between this Upaniṣad and major Upaniṣads such as the *Chāndogya Upaniṣad* and the *Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad*, as well as Purāṇic literature. Through the worship of Rāma, the text teaches that realization of Brahman is possible for everyone and not limited only to highly learned Vedic scholars[13].

In modern times, the Upaniṣad has become important in yoga and meditation traditions. Its mantras, especially "OṃRāṃ Rāmāya Namaḥ," are widely used for mantra-japa to develop concentration, inner peace, and spiritual purification[14]. Many devotional retreats and spiritual teachings use these mantras as a path to self-realization and liberation while living (jīvanmukti). The text also regards the Rāma mantra as equal in spiritual power to great Vedāntic teachings such as 'Tat Tvam Asi'.

References:

1. https://www.hinduwebsite.com/upalist.asp
2. *Vaiṣṇavopaniṣadaḥ*, p 219
3. Ibid, p 220
4. Catherine Ludvik (1994). *Hanumān in the Rāmāyaṇa of Vālmīki and the Rāmacaritamānasa of TulasīDāsa*. Motilal Banarsidass, pp-10
5. https://gita-society.com/wp-content/uploads/PDF/108upanishads.pdf
6. Lamb, Ramdas (2002). *Rapt in the Name: The Ramnamis, Ramnam, and Untouchable Religion in Central India*. SUNY Press., pp-193.
7. Ibid,pp-191-193.
8. Deussen, Paul (1997). *Sixty Upanishads of the Veda*. Motilal Banarsidass Publ., pp 556-557
9. Dalal, Roshen (2010*). Hinduism: An Alphabetical Guide*. Penguin Books India., p 60-61
10. Lamb, Ramdas (2002). *Rapt in the Name: The Ramnamis, Ramnam, and Untouchable Religion in Central India*. SUNY Press. pp-191-193.
11. Dodiya, Jaydipsinh (1 January 2001). *Critical Perspectives on the Rāmāyaṇa*. Sarup & Sons., pp-118
12. Ibid
13. https://archive.org/download/21-upanishads-dedicated-to-lord-ram-and-their-spiritual-philosophy/21%3DUpanishads%20Dedicated%20to%20Lord%20Ram%20and%20their%20Spiritual%20Philosophy.pdf
14. http://www.vedarahasya.net/ramarahasya.htm

Assistant Professor in Sanskrit,
Department of Sanskrit, University of Gour Banga,
Mokdumpur, Malda – 732103
Mob. 8100232021
&
Head, Department of Sanskrit,
Sailajananda Falguni Smriti Mahavidyalaya,
Khoyrasole-Babuijore Road, Khayrasole,
Veerbhum, West Bengal 731125
Mob. 7980375017

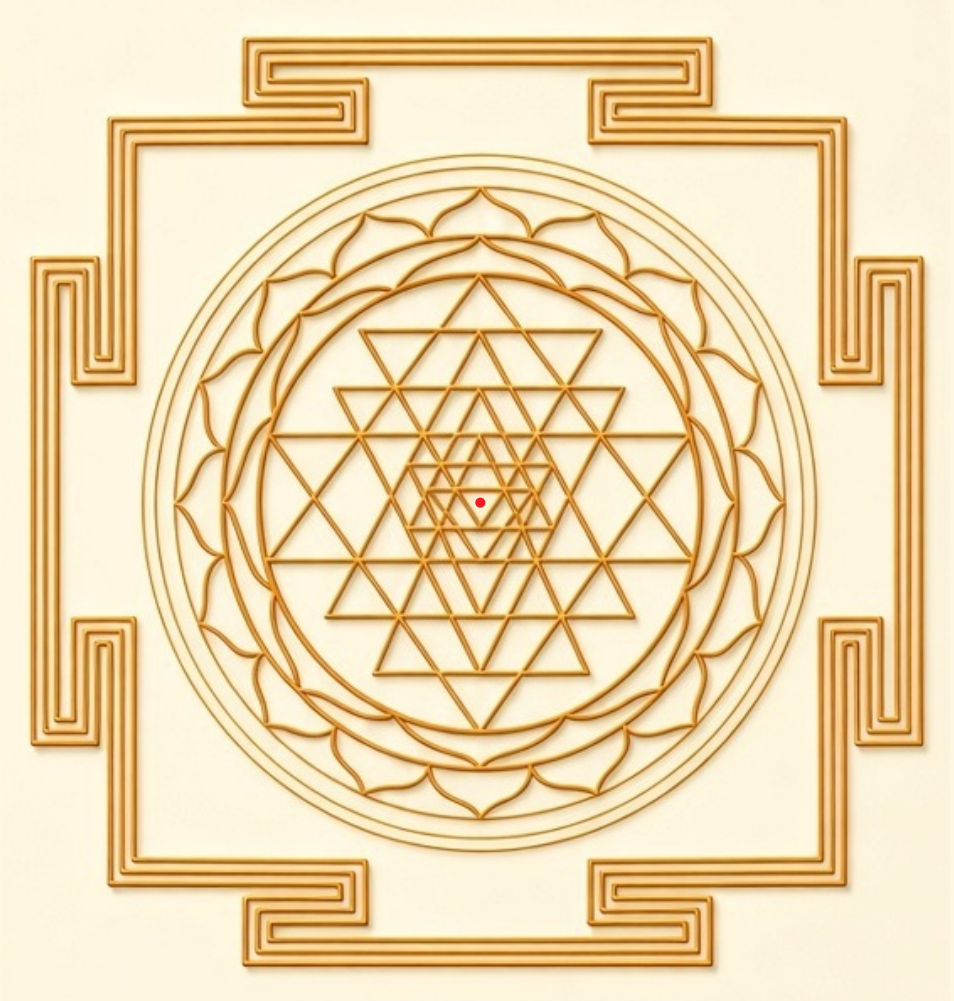

श्रीयन्त्रम्

श्रीविद्या साधना पीठ, वाराणसी

श्रीदत्तात्रेयानन्दनाथ जी (पं. सीताराम कविराज) ने सन् १९९६ ई० में श्रीविद्या मन्त्रयोग द्वारा भगवती पराम्बा ललितामहात्रिपुरसुन्दरी की उपासना तथा श्रीविद्या परम्परा के संरक्षण, संवर्धन एवं प्रसार के लिये श्रीविद्या साधना पीठ की स्थापना की। भारतवर्ष में अपने प्रकार की अद्वितीय इस संस्था की स्थापना स्वामी करपात्री जी महाराज के द्वारा उत्तर भारत में लुप्तप्राय श्रीविद्या उपासना को पुनरुज्जीवित व समृद्ध करने के उद्देश्य से की।

संस्था का भवन

वाराणसी में नगवा क्षेत्र में गंगाजी के सुरम्य तट के निकट ही अत्यन्त प्रशस्त और शान्त स्थल में नवनिर्मित चार मंजिल के भवन में यह आश्रम प्रतिष्ठित है। इसमें दो विशाल सभाकक्ष एवं तेरह कक्ष हैं, जिनमें यज्ञमण्डप, अर्चनकक्ष, ग्रन्थालय, शिक्षा एवं अनुसंन्धान प्रकाशन विभाग एवम् अतिथि कक्ष आदि स्थित हैं।

श्रीविद्या साधना पीठ के अङ्ग विभाग एवम् गतिविधियाँ

उपासना, अनुसन्धान एवं शिक्षण, (अध्यापन एवं छात्रावास सहित), प्रकाशन, ग्रन्थालय, साधक प्रशिक्षण/साधकावास एवम् अतिथिकक्ष।

साधना पीठ में निगमागम शास्त्रों द्वारा विहित उपासना यथाविधि नियमित रूप से सम्पन्न होती है। दीक्षित साधक/साधिकायें पारम्परिक आचार्य के निर्देशन में यह साधना सम्पन्न कर रहे हैं।

शिक्षण विभाग में छात्रों को सुयोग्य विद्वानों द्वारा वेद शास्त्र का नियमित अध्ययन कराया जाता है एवं उन्हें आगमतन्त्र का सामान्य रूप से तथा श्रीविद्या का विशेष रूप से प्रशिक्षण भी दिया जाता है।

श्रीविद्या-साधकों के पथप्रदर्शन, श्रीविद्यायन्त्रार्चन पद्धति के प्रशिक्षण आदि के साथ-साथ श्रीविद्या से सम्बन्धित दुर्लभ वाङ्मय का प्रकाशन, श्रीविद्यासाधकों की सेवा, सहयोग एवं मार्गदर्शन के लिए पीठ का द्वार सदा उद्घाटित है। श्रीविद्या से सम्बन्धित दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशन क्रम में श्रीविद्यारत्नाकर, श्रीविद्यावरिवस्या (पूजापद्धति), भुवनेश्वरीवरिवस्या, साम्बपञ्चाशिका (हिन्दी व्याख्या), विरूपाक्षपञ्चाशिका (हिन्दी व्याख्या), श्रीललितासहस्रनाम स्तोत्र, श्रीमहागणपतिवरिवस्या, उपचार मीमांसा आदि के अनन्तर साङ्गोपाङ्ग श्रीविद्योपासना का अपरिमेय सागर श्रीविद्यार्णवतन्त्र (भाग १-२) हिन्दी भावविवृति सहित सुलभ है।

साधनापीठ में करपात्र स्वामी स्मृति आगम के ग्रन्थों का एक ग्रन्थागार है इसमें आगम पर देश विदेशों में प्रकाशित ग्रन्थों, आगम-तन्त्र की पाण्डुलिपियों का सङ्ग्रह आरम्भ कर पाण्डुलिपि सङ्ग्रहालय स्थापित कर अप्रकाशित ग्रन्थों का प्रकाशन भी आरम्भ किया जा रहा है।

पूज्य गुरुदेव दत्तात्रेयानन्दनाथ जी द्वारा श्रीविद्या साधना पीठ के सम्मुख भव्य उपासना मण्डप एवं श्रीविद्यासाधना की प्रधान अङ्गभूत अनुत्तराम्नायअधिष्ठात्री श्रीशांकरी देवी ललितामहात्रिपुरसुन्दरी की भव्य प्रतिमा एवं श्रीयंत्र की स्थापना भी की गयी है। जहाँ प्रतिदिन श्रीयंत्र की महापूजा होती है।

शिक्षण/प्रशिक्षण

साधनापीठ में इस समय २० छात्र भोजन एवं आवास की सुविधा के साथ निःशुल्क शिक्षण एवं साधना का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं।

उपर्युक्त सुविधाओं के साथ ही नियमित छात्रवृत्ति एवं छात्रों की शिक्षा पूरी होने पर उनके नाम जमा की गयी एक निश्चित धनराशि देने का भी प्रावधान किया गया है।

अनुसन्धान एवं प्रकाशन

साधनापीठ अपने अनुसन्धान एवं प्रकाशन के कार्यक्रम का और विस्तार करेगा और श्रीविद्या के विभिन्न श्रेत्रों में तथा सामान्यतः आगमतंत्र के रहस्यों को साधकों तक उपलब्ध कराने हेतु षाण्मासिक पत्रिका श्रीविद्यामन्त्रमहायोग का नियमित प्रकाशन किया जा रहा है।

साधना

साधना के क्षेत्र में भी देश और विदेश के जिज्ञासु साधकों को समुचित निर्देश और प्रशिक्षण प्रदान करने के लिये आवश्यक तन्त्र का विस्तार किया जा रहा है।

श्रीविद्यासाधना पीठ द्वारा प्रकाशित श्रीदत्तात्रेयानन्दनाथ जी द्वारा सम्पादित एवं रचित ग्रन्थों की सूची

पुस्तक	लेखक	मूल्य
१. श्रीविद्यारत्नाकरः	षोडशानन्दनाथश्रीकरपात्रस्वामिरचित	८००/-
२. श्रीविद्यावरिवस्या	षोडशानन्दनाथश्रीकरपात्रस्वामिरचित	५००/-
३. श्रीमहागणपतिवरिवस्या	दत्तात्रेयानन्दनाथविरचित	३००/-
४. श्रीभुवनेश्वरीवरिवस्या	दत्तात्रेयानन्दनाथविरचित	३००/-
५. श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रम्	दत्तात्रेयानन्दनाथविरचित	१५०/-
६. उपचारमीमांसा	दत्तात्रेयानन्दनाथविरचित	५०/-
७. मन्त्रमहायोग	दत्तात्रेयानन्दनाथविरचित	२०/-
८. श्रीविद्या एवं श्रीयन्त्र एक परिचय	दत्तात्रेयानन्दनाथविरचित	२०/-
९. श्रीविद्यार्णवतन्त्रम् (प्रथम एवं द्वितीय भाग)	दत्तात्रेयानन्दनाथविरचित	प्रति सेट ३५००/-
१०. श्रीविद्या-साधना-मीमांसा	दत्तात्रेयानन्दनाथविरचित	६००/-
११. श्रीविद्यापञ्चरत्नम्	दत्तात्रेयानन्दनाथविरचित	-/-
१२. तान्त्रिकपंचांग (श्रीविद्यासाधनाऽष्टाङ्गम्)	दत्तात्रेयानन्दनाथविरचित	१००/-
१३. आगमतन्त्र की षाण्मासिक शोध पत्रिका (प्रति अंक)		१२५/-

इस पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन-पत्र पीठ की वेबसाईट पर उपलब्ध है -
Website Link : https://shreevidyasadhanapeeth.com
Email- shreevidyasadhanapeethvns@gmail.com